अगस्त्य संहिता

अ॰ सं॰
१

ॐस्वस्तिश्रीगणेशायनमः ॐनमः श्रीरामाय ॐअगस्त्योनामदेवर्षिसत्तमोगौतमीतटे कदाचिद्दंडकारण्येसु
तीक्ष्णस्याश्रमंययौ पत्युद्गम्यतंभक्त्यागंधपुष्पाक्षतोदकैः पाद्यार्घ्यायर्हणंचक्रे तस्मैब्रह्मविदेमुनिः सुतीक्ष्ण
स्तंप्रणम्याह सुखासीनंतपोनिधिं श्रीमदागमनेनैवजीवितंसफलंमम अद्यजन्मसहस्रेणतपःफलतिवांछितं
कामक्रोधादिभिर्भूयःसदाहंपीडितोमुने नादात्वंसम्यगिष्टापिकर्त्तुभिर्भूरिदक्षिणैः सत्पात्रेसर्वदानानिदत्वापिमु
निसत्तम भवाब्धेस्तरणोपायंनपश्यामिपिंडःकथम् किंकरिष्याम्यहंतातकथयस्वामिचमेवद इत्युक्तःसोऽब्रवीत्तेन
कुंभभूर्विगतस्पृहः क्षणंविचार्यतत्पौर्वापर्येणमुनिपुंगवः अगस्त्यउवाच शृणुवक्ष्यामितेसर्वंरहस्यंह्यघभय
जः यत्त्वत्पयादयत्सर्वंपार्वत्यैकथयात्मवित् ईश्वरउवाच कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दुष्टात्मानःपुनःपुनः उत्पद्यंतेप्र
लीयंतेपुनर्व्यामोहितास्तथा रौरवादिषुपच्यंते पुनःसंसारिणोभुवि कर्मशेषात्प्रजायंतेपंग्वंधबधिरादयः कृ
मिकीटादयोभूत्वापुनःसंसारिणोभुवि क्षुधातृषापहृताकेचिच्चौरव्याघ्रादिभिर्हताः प्रविशंतिजलेग्नौवादेशाद्देशंव्र
जंतिवा परस्त्रीधनहर्त्तारस्तापयंतिसतःसदा देवब्राह्मणवित्तैस्तुयेषांजीवनमन्वहं राजसत्तामसायेचहंतारो
वनजीविनः पुत्रदारादिभिर्ग्रस्ताःदुःखावर्त्तेभ्रमंत्यहो कलौपापेनसर्वेपिराजसास्तामसास्तथा निषिद्धाचरि

ॐ

अगस्त्य-संहिता (पूर्व भाग)

(११ अध्यायपर्यन्त)



हिन्दी-टीकाकार

पं० महावीर प्रसाद मिश्र

"साहित्यभूषण"

प्रकाशक :

विद्यावारिधि-ग्रन्थमाला-प्रकाशन

पो० कनखल (हरिद्वार)

श्री रामचन्द्राय नमः

भूमिका

एक बार महातेजस्वी और महातपस्वी ब्रह्मर्षि अगस्त्य जी श्री सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पधारे। सुतीक्ष्ण मुनि ने उनका यथोचित आदर सत्कार करके संसार से मुक्ति पाने का मार्ग जानने की याचना की।

महाप्रतापी अगस्त्य जी ऐसे सिद्ध महात्मा थे कि देवताओं के आग्रह से उन्होंने समुद्र को आचमन करके सोख लिया था। जिस समय राजा नहुष इन्द्र हो गये तब वह ऋषियों द्वारा उठायी हुई पालकी में बैठकर निकले थे, उन ऋषियों में अगस्त्य जी भी पालकी उठाये हुए थे। अचानक राजा नहुष का पैर महर्षि अगस्त्य जी के शरीर से छू गया, उसी अपराध पर महर्षि ने नहुष को सर्प बना दिया था।
(महाभारत वन-पर्व)

वातापि राक्षस को यह मायासिद्धि प्राप्त थी कि वह किसी भी रूप में ब्राह्मणों के भोजन में सम्मिलित हो जाता और भोजन के पश्चात् उन ब्राह्मणों को मारने के लिए जब इल्वल अपने भाई वातापि को पुकारता तब वह ब्राह्मणों के पेट से बाहर निकल आता था। एक बार अगस्त्य जी भी एक ब्राह्मणभोज में सम्मिलित हुए और वे वस्तुस्थिति को जान गये कि ये वातापि राक्षस की कर्तूत है अतः उन्होंने डकार लेकर असुर वातापि को ही हजम कर लिया। इस प्रकार की अनेक कथायें ऋग्वेद तथा पुराणों में वर्णित हैं! अगस्त्य

जो यह भी जानते थे कि श्री राम लक्ष्मण और सीता जी के दण्डकारण्य में आगमन पर वे एक दिन सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में ठहरे थे और इन्होंने ही मेरे आश्रम का मार्ग दिखाया था। (बाल्मीकि-रामायण-अरण्य काण्ड-सर्ग-११)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो श्रीराम-चरित-मानस के अरण्य काण्ड में सुतीक्ष्ण मुनि के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। इन्हीं सब बातों पर विचार करके ब्रह्मर्षि अगस्त्य जी ने जिज्ञासु सुतीक्ष्ण को मोक्षमार्ग का जो उपदेश दिया, उसी का नाम अगस्त्य संहिता है। यह ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र का लक्षणाक्रांत होने पर भी साधारणत: इसमें बहुत से ज्ञातव्य विषय कहे गये हैं। यह मौलिक धर्मशास्त्र होने के कारण इसका नाम संहिता है। सनातन धर्म के रक्षक अनेक विद्वानों ने इस अगस्त्य संहिता के श्लोक उद्धृत किये हैं। श्रीहरिभक्ति बिलास आदि अनेक ग्रन्थों में इसके प्रमाण मिलते हैं। इस ग्रन्थ में भगवान श्रीराम चन्द्र जो के मन्त्र-यन्त्र, न्यास, मुद्रा, कुण्ड, हवन, पूजा व पुरश्चरण. परिपाटी और उपदेशावली विशद रूप से कही गयी है और अन्त में लक्ष्मण और हनुमान जी के सिद्ध मन्त्रों का भी समावेश है। इस ग्रन्थ के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी दूसरे धर्म ग्रन्थ को देखने को आवश्यकता ही नहीं।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में योग-मार्ग की प्रणाली इतनी सरल और स्पष्ट रूप से सार-वान वाक्यों में कही गयी है कि योग-जिज्ञासुओं को दूसरा ग्रन्थ देखने की आवश्यकता नहीं, किन्तु योग मार्ग गुरु से ही सफल होता है। यह अगस्त्य संहिता ग्रन्थ 'विद्यावारिधि-पुस्तकालय में बड़ी जीर्ण शीर्ण अवस्था में था। इस ग्रन्थ पर मेरे पितृव्य सुप्रसिद्ध लेखक

श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र ने कुछ कार्य करने का निश्चय किया था, किन्तु सन् १९२७ में उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण कुछ नहीं हो सका। इस अगस्त्य संहिता का कुछ अंश मुझे अलवर स्टेट की लायब्रे री से भी हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुआ था, जिसकी मैंने धन व्यय करके नकल प्राप्त की थी।

ब्रह्मर्षि अगस्त्य जी के श्रीमुख से निःसृत अमृतोपम यह धर्मशास्त्र का अमूल्य ग्रन्थ हिन्दूजनता के लिये नित्य प्रयोजनीय होने पर भी भारत में बिलकुल अप्राप्य था, अतएव सबके उपकार के लिये इस विलुप्त रत्न का उद्धार करना आवश्यक समझा गया। इस ग्रन्थ का अनुवाद कैसा हुआ है ये तो पाठक ही समझ सकेंगे। ग्रन्थ के इस हिन्दी अनुवाद से यदि धर्मप्राण मनुष्यों का कुछ भी उपकार हो सका, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

विद्यावारिधि-पुस्तकालय — अनुवादकर्ता

चौक बाजार, कनखल — *महावीर प्रसाद "मिश्र"*

सम्वत् – २०४२

नोटः—

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अनुदान के रूप में जो धन प्राप्त हुआ था उसमें इस ग्रन्थ के केवल ११ अध्याय ही प्रकाशित हो पाये, जबकि पूरे ग्रन्थ में ३२ अध्याय हैं। इस समय केवल ११ अध्याय का ही यह भाग आपके समक्ष है आगे का प्रकाशन धर्मप्रेमी दानी महानुभावों पर निर्भर है।

श्रीहरि :

अगस्त्य-संहिता

प्रथमो अध्यायः

अगस्त्यो नाम देवर्षिसत्तमो गौतमी तटे ।
कदाचिद्दण्डकारण्ये सुतीक्ष्णस्याश्रमं ययौ ॥१॥

एक वार देवर्षि प्रवर अगस्त्य जी दंडकारण्य में गौतमी नदी के किनारे सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में गये ॥१॥

प्रत्युज्जगाम तं भक्त्या गंधपुष्पाक्षतोदकैः ।
पाद्यार्घ्याद्यर्हणं चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे मुनिः॥२ ॥

उन ब्रह्मज्ञानी अगस्त्त जी के आने पर सुतीक्ष्ण जी भक्ति पूर्वक उनको आगे लेकर आये और गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा जल द्वारा यथाविधि उनकी पाद्य अर्घ्य इत्यादि से पूजा करके–॥२॥

सुतीक्ष्णस्तं प्रणम्याह सुखासीनं तपोनिधिम् ।
श्रीमदागमनेनैव सफलं जीवितं मम ॥३॥

सुतीक्ष्ण जी ने उनको प्रणाम किया। तपोनिधि अगस्त्य जी के सुख पूर्वक बैठने पर सुतीक्ष्ण जी कहने लगे–हे महा-भाग ! आपके इस आगमन से मेरा जीवन सार्थक होगया ॥३॥

अद्य जन्मसहस्त्रेषु तपः फलति सञ्चितम् ।
कामक्रोधादिभिर्भूयो भूयोऽहं पीड़ितो मुने ॥४॥

आज मेरी सहस्त्र जन्म की संचित तपस्या सफल हुई । हे मुने ! मैं काम क्रोधादि रिपुगणों से बारम्बार आक्रान्त होता हूं ॥४॥

ना द्राक्षं सम्यगिष्ट्वापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः ।
सत्पात्रे सर्व्वदानानि दत्वापि मुनिसत्तम ॥५॥

हे मुनिवर ! मैंने प्रचुर दक्षिणायुक्त बहुत यज्ञ किये हैं और सत्पात्रों को सब प्रकार का दान भी दिया है ॥५॥

भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्तप्त्वातिदुष्करम् ।
किं करिष्याम्यहं तात क्व प्रयास्यामि मे वद ॥६॥

अत्यन्त कठोर तपस्या भी की है किन्तु भवसागर से पार होने का उपाय कुछ भी दिखाई नहीं दिया । ऐसी दशा में हे प्रभो ! मैं अब क्या करूं, कहां जाऊं ? सो मुझसे कहिये ॥६॥

इत्युक्तः सोऽब्रवीत्तेन कुम्भभूर्विगतस्पृहः ।
क्षणं विचार्य्य तत् पौर्व्वापर्य्येण मुनिपुङ्गवः ॥७॥

सुतीक्ष्ण जी के इस प्रकार कहने पर कुम्भ से उत्पन्न निस्पृह मुनिवर अगस्त्य जी क्षणकाल तक उनके वक्तव्य विषय पर पूर्वापर विचार करके कहने लगे ॥७॥

अगस्त्य उवाच

अस्ति वक्ष्यामि ते सर्वं रहस्यं वृषभध्वजः ।
यत् प्रत्यपादयत्पूर्व्वं पार्व्वत्यां कृपयात्मवित् ॥८॥

अगस्त्य जी बोले—हे महाभाग ! भवसागर से पार होने का सदुपाय है। पहले यह रहस्य वृतान्त आत्मज्ञ वृषवाहन शंकर ने कृपा करके पार्वती से जिस प्रकार कहा था, वही मैं तुमसे कहता हूं ॥८॥

ईश्वर उवाच

कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दुष्टास्तत्र पुनः पुनः ।
उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते पुनर्व्यामोहितास्त्वया ॥९॥

ईश्वर कहने लगे—हे शिवे ! यह संसारवासी जीव गण तुम्हारी माया से मोहित हो कामक्रोधादि शत्रुओं के वशीभूत होकर कर्मफल से बारम्बार जन्म लेते और मरते हैं ॥९॥

रौरवादिषु पच्यन्ते पुनः संसारिणो भुवि ।
कर्मशेषात् प्रजायन्ते पंग्वन्धबधिरादयः ॥१०॥

कोई रौरव इत्यादि नरक भोगकर फिर किये हुए कर्मों के शेष फल से इस कर्म भूमि में लंगड़े, अन्धे और बहरे होते हैं ॥१०॥

कृमिकीटादयो भूत्वा पुनः संसारिणो भुवि ।
केचिच्छस्त्रहताः केचिच्चौरव्याघ्रादिभिर्हताः ॥११॥

कोई कोई कृत कर्मो के फल के अनुसार कृमि कीट इत्यादि कष्ट भोग की देह पाकर संसार में घूमते हैं। कोई शस्त्र के आघात से मरते हैं, किसी की चोर और व्याघ्र इत्यादि हिंसक जन्तु हत्या करते हैं ॥११॥

प्रविशन्ति जलेऽग्नौ वा देशाद्देशंव्रजन्ति वा ।
पर-स्त्री-धनहर्तारस्तापयन्ति सतः सदा ॥१२॥

कोई जल में और कोई अग्नि में प्रवेश करके मरते हैं। कोई एक देश से दूसरे देश में घूमते–फिरते हैं। कोई पर स्त्री और परधन चोरी करके सदैव सज्जनों को सन्तापित करते हैं ॥१२॥

देव-ब्राह्मण वित्तेषु येषां जीवनमन्वहम् ।
राजसास्तामसा ये च हन्तारो वनजीविनः ॥१३॥

कितने ही जीवों में रजोगुण ही प्रवल है, वे देवता और ब्राह्मणों के धन से ही उदर पूर्ति करते हैं। दूसरे कितने ही ऐसे हैं जो वन के निरीह जीवों की हिंसा करके तमोगुणी प्रकृति दिखाते हैं ॥१३॥

पुत्रदारादिभिर्युक्ता दुःखावर्त्ते भ्रमन्त्य हो ।
कलौ प्रायेण सर्वेऽपि राजसास्तामसास्तथा ॥१४॥

कलियुग में प्रायः अधिकांश मनुष्य राजसिक और तामसिक प्रकृति के होकर स्त्री-पुत्र और परिजनादि के सहित दुःखसागर में भ्रमण करते हैं ॥१४॥

निषिद्धाचारिणः सन्तो मोहयन्त्यपरान् बहून् ।

द्वितीयोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

कमुपास्य लभेन्मुक्तिं क्रियया वा कया प्रभो।
मुमुक्षोः पुनरावृत्तिदुर्लताभयभञ्जन ॥१॥

पार्वती जी बोलीं–हे प्रभो ! किसकी उपासना करने से और कौन कर्म करने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, सो कहिये ? आपके अतिरिक्त इस विषय का वक्ता और कोई नहीं है। अतएव मुमुक्षु व्यक्ति को संसार में पुनरावृत्ति रूपिणी दुष्टलता से जो भय होता है उसको वह स्वयं नष्ट कर सके। १।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि महाभागे रहस्यं कथयाम्यहं।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥२॥

ईश्वर बोले–हे सौभाग्यवति ! मैं वह गुप्त विषय कहता हूँ, जिसको जान लेने से जीव संसार बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ॥ २ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीताऽपीक्षतेप्यदृक्।
अकर्णः संशृणोत्येतच्छन्दोरूपं परं महः ॥३॥

जो पादहीन होने पर भी वेगवान्, हस्तशून्य होने पर भी सम्यक् गृहण करने में समर्थ, अन्धे होने पर भी सब कुछ देखने वाला, कर्णहीन होने पर भी सब कुछ सुनने वाला और जो घोर अन्धकारमय होने पर भी उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप है ॥ ३ ॥

वेत्ति वेद्यं स सर्वज्ञो नावेद्यं विद्यते प्रभोः ।
स महापुरुषः पुंसां स्त्रीणां पुंव्यक्ति लक्षणः ॥४॥

वह सर्वज्ञ है अतः वह समस्त जानने योग्य पदार्थों को जानता है प्रभु से छिपा हुआ कुछ भी नहीं है। वही महापुरुष, पुरुष और स्त्री दोनों ही लक्षणों वाला है ॥ ४ ॥

स्त्री-पुं-नपुंसकाकाररहितः पुरुषोत्तमः ।
सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वदेवमयो हरिः ॥५॥

उस पुरुषोत्तम में स्त्री, पुरुष या नपुंसक इन तीनों का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता, वह इन तीनों रूपों से रहित है। वे भगवान् हरि सब के ईश्वर, सर्वरूप और सर्वदेवमय हैं। अर्थात् सर्वव्यापक हैं ॥५॥

सत्वज्ञानमयोऽनन्तोऽनादिरानन्द उच्यते ।
अजः स्मरणमात्रेण जन्मादिक्लेशनाशनः ॥
तस्यात्मताधीः सर्वेषां पुनरावृत्ति कर्तनी ॥६॥

वे सत्यस्वरूप और ज्ञानमय हैं, उनका आदि वा अन्त नहीं है उन्हीं को लोक में आनन्द के नाम से कथन किया जाता है। उन नित्य पुरुष का जन्म न होने पर भी उनको स्मरण करते ही दूसरों की जन्म यातना दूर हो जाती है। उनके स्वरूप का

ज्ञान समस्त पुरुषों का संसार में पुनरागमन निवारण कर देता है ॥ ६ ॥

नियमेनैव वर्णानां स्वाश्रमोक्तेन स प्रभुः ।
ध्येयः संसारनाशाय नचैवावर्त्तते पुनः ॥७॥

यदि ब्राह्मणादि चारों वर्णो को संसार सूत्र नष्ट करना हो तो अपने-अपने गृहस्थ आदि आश्रमों के विधानानुसार ही सब प्रकार से उन प्रभु का ही चिन्तन करना चाहिए। उन प्रभु का चिन्तन करने से फिर कर्मभूमि में आकर कष्ट भोगना नहीं पड़ता ॥ ७ ॥

स्वाश्रमोक्तं परित्यज्य य आत्मानमुपासते ।
न तद्रूपेण ते देवि मुच्यते भवबन्धनात् ॥८॥

हे देवि ! अपने-अपने आश्रमों का विहित विधान छोड़कर जो व्यक्ति आत्मोपासना करता है, उसका इस प्रकार भवबन्धन से छूटना महा कठिन है ॥ ८ ॥

श्रुति स्मृति पुराणेषु यो यो नियम उच्यते ।
यस्य यस्याश्रमन्यायो न मोक्तव्यो मुमुक्षुभिः ॥९॥

अतएव वेद, स्मृति और पुराणों में जिस-जिस आश्रम के जो जो नियम कहे गये हैं उनका मुमुक्षु व्यक्ति को कदापि उलंघन करना उचित नहीं है ॥ ९ ॥

अतो नियममाहृत्य कुर्याध्यानमनन्यधीः ।
एतच्चराचरं विश्वं स्वप्नप्रत्ययवत् सुधीः ॥

दृष्ट्वा दृग्व्यतिरिक्तं यद्दृश्यत्वात्तत्तथा प्रिये ॥१०॥

अतएव वेद की विधि का अनुसरण करके एकाग्र चित्त से ब्रह्म का ध्यान करे। हे प्रिये ! बुद्धिमान् मनुष्य इस स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण संसार का स्वप्नानुभूत के समान मिथ्या स्वरूप देख कर अप्रत्यक्ष ब्रह्म के अनुभव करने का प्रयत्न करे॥ १० ॥

दृग्रूपेणात्मना ज्ञानं सत्यानन्दात्मनः स्वयम् ।
एकाकी यतचित्तात्मा चिन्तयेत्तदनन्यधीः ॥११॥

सत्यस्वरूप आनन्दमय परमात्मा को अपने में ही प्रत्यक्षरूप से समझ कर एकाकी रह संयतचित्त होकर एकाग्र मन से ध्यान करता रहे॥ ११ ॥

सोहऽमित्यात्मनो ज्ञानं स्वात्मना परिकल्पितम् ।
एतत् स्वव्यतिरिक्तं यत् यतः स्वेनैव कल्प्यते ॥१२॥

मैं परमात्मा से पृथक नहीं हूँ, मैं ही वह परम पुरुष हूं। इस प्रकार अभेद ज्ञान की उस समय कल्पना होगी और विश्व जो अपने से भिन्न है उसकी अपने द्वारा ही प्रतीति होगी ॥१२॥

न पारमार्थिकं देवि यद्वद्वालो हि कल्पयेत् ।
वालाज्ञयोर्वा को भेदः कल्प्यते तत्वचक्षुषा ॥१३॥

हे देवि ! उस समय ईश्वर को छोड़ कर अन्य पदार्थ में अस्तित्व बुद्धि नहीं रहती। यह बालकों की कल्पना के समान शून्यमात्र है, इसकी वास्तविकता कुछ नहीं है, तत्वज्ञान के उदय

होने पर बालक ओर मूर्ख की कल्पना में भिन्नता मालूम नहीं होती, दोनों का ही समान व्यवहार समझा जाता है ॥ १३ ॥

अयं पन्थः पुराणः स्यादर्थविद्भिः पुरातनैः ।
अध्यात्मविद्भिरर्वाञ्चो ज्ञापिताः स परः स्मृतः ॥१४॥

यह ब्रह्मज्ञान ही पुरातन मार्ग है, शास्त्र के जानने वाले तत्वज्ञानी प्राचीन आचार्यों ने इसी को उत्कृष्ट मार्ग कह कर जिज्ञासु सज्जन पुरुषों के लिए प्रकट किया है ॥ १४ ॥

आब्रह्मशुद्धवंश्यानां मातापित्रोः कुले च ये ।
न स्त्रियो व्यभिचारिण्यः पुरुष्यश्चैव धार्मिकाः ॥१५॥

ब्रह्मा जी के सृष्टिकाल से जिनका वंश पवित्र है, जिनके पितृकुल और मातृकुल में स्त्रियां व्यभिचारिणा नहीं हैं और पुरुष भी धार्मिक हैं ॥ १५ ॥

यज्ञाश्च वेदाध्ययनमेधते प्रतिपूरुषम् ।
पूज्यन्तेऽतिथयो यत्र गुरुशिष्य परम्परा ॥१६॥

जहां प्रत्येक पुरुष यज्ञानुष्ठान और वेदाध्ययन करता आया है। जहां गुरु-शिष्य की परम्परा में अतिथि सत्कार होता आता है ॥ १६ ॥

स्वल्पोऽपि स्खलते नैव स्त्रीष्वपि ब्रह्मचारिषु ।
नियमोऽप्याश्रमस्थेषु कदाचिन्न विमुच्यते ॥१७॥

जिस कुल की स्त्रियां और पुरुष किसी भी आश्रम में वास क्यों न करें, उन सब आश्रमों में उनका वेदोक्त नियम किञ्चित्

भी नहीं टूटता ।। १७ ।।

स्व स्वकालेषु दानं हि तदर्थिभ्यः प्रदीयते ।
येषु वंशेषु सर्वेषां तेषामेव प्रकाशते ।।
ब्रह्म ब्रह्मविदां देवि गुरुशिष्योक्ति शिक्षया ।।१८।।

और जिन वंशों में याचक व्यक्तियों के आने पर याचना मात्र से याचित वस्तु दी जाती है उन वंशों के समस्त स्त्री-पुरुष साधारण व्यक्तियों की गुरु-शिष्य परम्परा के उपदेशानुसार ब्रह्मज्ञान का अनुसंधान करते रहने से वह ब्रह्म स्वयं ही प्रकाशित होता है ।। १८ ।।

अयमेव परं ब्रह्म नान्यत् किञ्चन विद्यते ।
इदमेव परं ब्रह्म ततोऽन्यन्नास्ति किञ्चन ।।१९।।
तदेतदखिलं ब्रह्म सत्यं सत्यं प्रकाशते ।।२०।।

ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, यह समस्त ही ब्रह्म है, उससे पृथक् कुछ भी न समझे ।। १९ ।। निर्मल सत्य के आश्रय से समस्त चराचर ब्रह्मस्वरूप में ही प्रकाशित होता है ।। २० ।।

जन्मकोटीसहस्त्रेषु प्रक्षीणाशेष दुष्कृतैः ।
कैश्चिदेवं नियम्यासून परोक्षं निरीक्ष्यते ।।२१।।

कोई-कोई मनुष्य हजार करोड़ जन्म के पीछे सम्पूर्ण पापों के नष्ट होने पर प्राणायामादि योग की सहायता से इस परम पुरुष का दर्शन कर पाता है ।। २१ ।।

सुखामृत रसास्वाद सत्यैकज्ञने रूपता ।
भागधेयेन विदुषा स्वयमेवानुभूयते ।।२२।।

उसका दर्शन होने पर दूसरे के भाग्य की वात क्या कहूं ? जो पण्डित जन परमेश्वर को सत्य और नित्य ज्ञानमय समझते हैं वे ही इस नित्य सुखमय अमृतरस के स्वाद का अनुभव करते हैं ।। २२ ।।

अहो पुण्यमहो धर्म्यन्नातः परतरं प्रिये ।
अकृत्येष्वपि सर्वेषु प्रायश्चित्तमिदं परम् ।।२३।।

हे प्रिये ! इससे अधिक पुण्य और कुछ नहीं है तथा इससे उत्तम धर्म भी और कुछ नहीं है। समस्त अकार्यों के लिए इसको उत्कृष्ट प्रायश्चित्त स्वरूप समझना चाहिए ।। २३ ।।

इतिश्री अगस्त्य-संहितायां पं० महावीरप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां परम रहस्य कथनं नाम द्वितीयोध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

श्री पार्वत्युवाच

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुःख निसूदन ।
सर्वेषां निगमः पन्थाः को मे वद दयानिधे ।।१।।

श्री पार्वती जी बोली-हे सर्वज्ञ ! हे लोकनाथ ! हे दयासागर ! आप समस्त लोकों का सव प्रकार का दुःख दूर करते हैं। इस समय सबका सार स्वरूप मार्ग कौन सा है ? सो मुझसे कहिये ।। १ ।।

ईश्वर उवाच

श्रृणुष्वावहिता देवि यदेतत् प्रतिपाद्यते ॥२॥
सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः ।
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः ॥३॥

ईश्वर बोले–हे देवि ! जो मैं कहता हूं वह सावधान होकर सुनो ॥२॥ वे विश्व रूप जगदीश्वर सब जीवों का ही हित करने में निरत हैं। उन्होंने निराकार होकर भी सर्वसाधारण का उपकार करने के लिए ही साकार रूप धारण किया है ॥ ३ ॥

स भक्तवत्सलो लोके संसारीव व्यचेष्टत ।
भक्तानुकम्पया देवो दुःखं सुखमिवान्वभूत ॥४॥

वे भक्तवत्सल भगवान् लोक में अवतीर्ण होकर संसारी जीवों के समान आचरण करते हैं और भक्तजनों पर कृपा करके ही दुःख को भी सुख के समान निर्विकार रूप से अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

यदा यदा च भक्तानां भयमुत्पद्यते तदा ।
तत्तद् भय विघाताय तत्तद्रूपो व्यजायत ॥५॥

जब–जब भी भक्तों को भय उपस्थित होता है तब ही तब वे उस भय को दूर करने के लिए उस-उस रूप में उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

मत्स्य कूर्म वराहादि रूपेण परमात्मदृक् ।
तत्तत्कालेन सम्भूय सर्वेषामभ्युपाकरोत् ॥६॥

तदनुसार उस परमात्मा ने मत्स्य, कूर्म, वराह आदि रूप में उस समय अवतरित होकर सबका उपकार किया है ॥ ६ ॥

साधुनामाश्रमस्थानां भक्तानां भक्तवत्सलः ।
उपकर्त्ता निराकारस्तदाकारेण जायते ॥७॥

उन भक्तवत्सल विभु का निजी कोई आकार न होने पर भी जिस किसी आश्रमवासी भक्त साधु पुरुष के उपकारार्थ उस आकार में अवतीर्ण होते हैं ॥ ७ ॥

अजोऽयं जायतेऽनन्तः सान्तोऽभूद्भूतनाशनः ।
कदाचिदवतीर्यायं मन्दभक्तानुकम्पया ॥८॥

वे अजन्मा होने पर भी भक्त के कारण जन्म ग्रहण करते हैं और उन उपद्रवनाशी का अन्त न होने पर भी भक्तों के प्रति दयावान् होकर कदाचित् अवतीर्ण होने के कारण ही उनका अन्त देखा जाता है । ८ ।

क्षीराब्धेदेवदेवेशो लक्ष्म्या नारायणो भुवि ।
सशेषः शंख चक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणो बभौ ॥९॥

देव-देव नारायण क्षीरसागर से लक्ष्मी, अनन्तदेव, शंख और चक्र को साथ लेकर ब्रह्मादि देवताओं के सहित त्रेतायुग में इस पृथ्वी पर आकर दशरथ पुत्र हो शोभा को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

शेषोऽभूल्लक्ष्मणो लक्ष्मीः शंख चक्रे च जानकी ।
जातौ भरत शत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः ॥१०॥

उस समय अनन्तदेव–लक्ष्मण और लक्ष्मीदेवी ही जानकी जी हुईं तथा शंख और चक्र ही यहां भरत और शत्रुघ्न तथा सब देवता वानर हुए ॥ १० ॥

वभूवुरेवं सर्वेऽपि देवर्षि भय शान्तये ।
तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः ॥
सर्वलोकोपकाराय भूमौ सोऽयमवारेत् ॥११॥

वहां स्वयं नारायण देव समस्त लोकों का उपकार करने के लिए तथा देवता और ऋषियों का भय दूर करने के लिए कौशल्या जी के गर्भ से भूमण्डल पर अवतीर्ण हो श्रीराम नाम से विख्यात हुए ॥ ११ ॥

तपः कुर्वन्ति तं केचिदपरोक्षं निरीक्षितुम् ।
पञ्चाग्निमध्ये ग्रीष्मेषु वर्षासु भुवि शेरते ।
शिशिरेषु जलेष्ववं तपः केचन तेपिरे ॥१२॥

उन अतीन्द्रिय पुरुष का साक्षात् दर्शन करने के लिए कोई दारुण ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के मध्य रह कर तपस्या करता है, कोई वर्षा में पृथ्वी पर शयन करके और कोई प्रचण्ड शीत के समय जल में बैठ कर तपस्या करता है ॥ १२ ॥

केचिद् भिक्षां पर्यटन्ति कृत्वा धारणपूरणे ।
शोषयन्ति पुनर्देहमपरे [1]कृच्छ्रचर्यया ॥१३॥

कोई भिक्षापात्र लेकर भिक्षा के लिए घूमता है। कोई कृच्छ्र आदि कष्टसाध्य व्रताचरण करके शरीर को सुखाता है ॥ १३ ॥

कालश्चान्द्रायणैरेवं कैश्चित् पार्वति नीयते ।
शाकमेवापरे देहमश्नन्तः शोषयन्त्यहो ॥१४॥

हे पार्वति! कोई उसको प्राप्त करने की आशा से [2]चान्द्रायण इत्यादि अन्यान्य व्रतों का अनुष्ठान करता हुआ समय व्यतीत

१- कृच्छ्र–संहिताकारों ने अनेक प्रकार के कृच्छ्रों का विधान कहा है । याज्ञवल्क्य कहते हैं कि–गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन् ॥ (३।३१४) अर्थात् पहले दिन निराहार रह कर गोबर, गोमूत्र, दूध, दही और घृत यह पंचगव्य कुशोदक के साथ पीकर दूसरे दिन उपवास करना चाहिए। पीछे सात दिन भी उहवास किया जाता है। इसे द्विरात्रिक सान्तपन कृच्छ्र कहते हैं। इसके अतिरिक्त दुष्कर्मों के प्रायश्चित्तानुसार याज्ञयल्क्य ने महासांतपनकृच्छ्र, पर्णकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, पादकृच्छ्र प्राजापत्यकृच्छ्र, अतिकृच्छ्र कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत भी कहे हैं।

२- चान्द्रायण व्रत–एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् । उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चन्द्रायणं व्रतम् ॥ (मनु अ० ११/२१६) अर्थात् कृष्णपक्ष में एक एक ग्रास कम करे और शुक्ल पक्ष में एक एक ग्रास बढावे तथा प्रतिदिन त्रिकाल स्नान करे, यह चान्द्रायण व्रत कहलाता है। इससे आगे यवमध्यमचान्द्रायणव्रत तथा शिशु चान्द्रायणव्रत भी कहा गया है।

करता है और कोई उसको प्राप्त करने के लिए केवल मात्र शाक खाकर ही शरीर को सुखाता है ॥ १४ ॥

इह केचिद्वरारोहे नक्तं यावक भोजनाः ।
चिन्तयन्ति चिरं विल्ववनेष्वेकाकिनो हृदि ॥१५॥

हे वरारोहे ! इस संसार में कोई उनको पाने की आशा से रात्रि में केवल मात्र यवपिंड खाकर ही रह जाता है और कोई बहुत काल तक विल्ववन में एकाकी रह कर हृदय में उनकी चिन्ता करता है ॥ १५ ॥

अनन्यमनसः शश्वद्गणयन्तोऽक्षमालया ।
जपन्तो राम रामेति सुखामृतनिधौ मनः ॥
विप्रलीयामृतीभूय सुखं तिष्ठन्ति केचन ॥१६॥

कोई एकाग्रचित्त से निरन्तर जपमाला द्वारा राम नाम जपता हुआ चित्त को सुखसागर में निमग्न कर स्वयं भी अक्षय अमर हो सुख से अवस्थान करता है ॥ १६ ॥

मत्पश्चिमाभिमुख्येन केचित् प्रासादकोटरे ।
भावयन्ति चिरं देवि भगवत्प्राप्तये बुधाः ॥१७॥

हे देवि ! कितने ही बुद्धिमान पुरुष भगवान् को प्राप्त करने के लिए गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी भवन के एकान्त में बहुत काल तक चिन्तन करते हैं ॥ १७ ॥

परिचर्यापराः केचित् प्रासादेष्वेव शेरते ।
मनुष्यमिव तं द्रष्टुं व्यवहर्तुञ्च बन्धुवत् ॥१८॥

कोई कोई अपने भवन में ही भगवान् के लिए उत्कृष्ट स्थान बनाकर उनको मनुष्य के समान देखने के लिए अथवा उनके साथ बन्धु के समान व्यवहार करने के लिए भगवत् सेवा परायण होते हैं ॥ १८ ॥

अध्यापनाय विद्यानां योद्धमुप्यपरे तपः ।
चक्रिरे वैरिणो भूत्वा केचिद्गोष्ठीषु तेपिरे ॥१९॥
क्षीराहाराः परेऽप्यब्धेस्तीरेष्वेव निषेविरे ॥२०॥

कोई—विद्या प्राप्ति के लिए उनकी उपासना करता है और कोई भगवान् को शत्रु समझ कर उनके साथ युद्ध (में विजय प्राप्त) करने के लिए साधारण स्थान में तपस्या करता है ॥ १९ ॥ और कोई केवल दुग्ध का ही आहार करके समुद्र के किनारे ही उनकी आराधना करता है ॥ २० ॥

चञ्चलाक्ष्यथ केषाञ्चित्तपश्चर्तुं न शक्यते ।
नः करिष्यति देवोऽयमेवं दृष्ट्वा सुदारुणम् ॥२१॥

हे चञ्चल नयने ! कोई-कोई कठिन तपस्या करने में शक्ति-हीन होने पर वे भगवान् की ओर ही देखते हैं कि भगवान् ही हमारे सब कार्य करेंगे ॥ २१ ॥

तपस्तपस्विनामेतत् कृपयान्वग्रहीदिह ।
मानुषीभूय सर्वेषां भक्तानां भक्तवत्सलः ॥२२॥

भक्तवत्सल भगवान् ने इन सब भक्त तपस्वी लोगों की कातरता देख-करुणा के वशीभूत हो मनुष्य रूप धारण करके उन पर अनुग्रह किया ॥ २२ ॥

ध्यानमात्रेण देवेशि महापातकनाशकृत् ।
कीर्तन-स्मरणाभ्याञ्च हत्याकोटिनिवारणम् ॥२३॥

हे देवेश्वरि ! उनका केवल मात्र ध्यान करने से ही महा-पापों का नाश हो जाता है और कीर्तन तथा स्मरण करने से तो करोड़ों ब्रह्महत्याओं का पाप भी दूर हो जाता है ॥ २३ ॥

रामरामेति रामेति ये वदन्त्यतिपापिनः ।
पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा ॥२४॥

जो अत्यन्त पापी हैं वे भी यदि राम–राम ये दो वर्ण रूपी प्रभु का नाम मुख से उच्चारण करें तो प्रभु उनका भी कोटि सहस्र पापों से निश्चय ही उद्धार कर देते हैं, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥

उग्रेण तपसा तेषां सोऽभूदेवं दयानिधिः ।
यतो वाचो निवर्तन्ते मनोभिः सहयोगिनाम् ॥२५॥

उन तपस्वियों की कठोर तपस्या से भगवान् दयामय हुए थे जिनसे योगी जनों की वाणी हृदय की वृत्ति के साथ ही साथ निवृत्त होती है अर्थात् योगीजन भी ध्यान–धारणा या वाक्य द्वारा जिसके स्वरूप का निर्देश नहीं कर सकते, वही अनन्त परमेश्वर ॥ २५ ॥

भाग्यधेयेन सर्वेषां स प्रत्यक्षमजायत ।
अहो भाग्यातिरेकेण मनुष्योऽयं व्यवाहरत् ॥२६॥

भाग्य बल से ही जन साधारण के सन्मुख प्रकट हुए थे

इसके अतिरिक्त मनुष्य का भाग्य और क्या हो सकता है कि विश्वरूप भगवान् ने स्वयं राम–रूप में आकर उनके साथ मनुष्य के समान व्यवहार किया ॥ २६ ॥

तपो ददाति सौभाग्यं तपो विद्यां प्रयच्छति ।
तपसा दुर्लभं किञ्चिन्नास्ति भामिनि देहिनाम् ॥२७॥

हे सुन्दरि ! तुम निश्चय ही जानो कि तपस्या ही मनुष्य को सौभाग्य प्रदान करती है, तपस्या ही मनुष्य को विद्या दान करके पण्डित वनाती है। मनुष्य को तपस्या के द्वारा संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ २७ ॥

अवाप्त सर्वकामोऽयं वाङ्मनो गोचरो विभुः ।
मनुष्य इव मानुष्यमाधाय भुवि मोदते ॥२८॥

देखो–सम्पूर्ण कामनाएं जिनके करतल गत हैं वही प्रभु वाक्य और मन के गोचर होकर मनुष्य भाव धारण करके भूमण्डल पर जो मनुष्य के समान आनन्द को प्राप्त हुए थे, वह भक्तों की तपस्या का ही प्रभाव था ॥ २८ ॥

अहो कृपातिरेकेण सर्वञ्च समुपैति वै ।
एतस्मादपि किं लाभादधिकं गजगामिनि ॥२९॥

अहो, भगवान् की कृपा से सब कुछ ही प्राप्त होता है। हे गज-गामिनि ! भगवान् को साक्षात् पाने की अपेक्षा संसार में और अधिक लाभ क्या हो सकता है ? ॥ २९ ॥

तपो धनं तपो भाग्यं तपः सर्वत्र सर्वदम् ।
अतस्तपस्विनां देवि दासत्वमपि दुर्लभम् ॥३०॥

तपस्या ही धन और तपस्या ही भाग्य है, सर्वत्र तपस्या ही सम्पूर्ण अभिलाषित वस्तु प्रदान करती है। अतएव हे देवि ! तपस्वियों का दास होना भी मनुष्य को सुलभ नहीं है ॥ ३० ॥

इतिश्री अगस्त्य-संहितायां पं० महावीरप्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां परम रहस्य कथनं नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्री पार्वत्युवाच

योगीन्द्र वन्द्य चरण द्वन्द्वानन्दैक लक्षण ! ।
कथमेन मुपास्यैव मुक्ति सर्वेऽपि भेजिरे ।
तदेतद्ब्रूहि देवेश यद्यस्ति करुणामयि ॥१॥

श्री पार्वती जी बोलीं—हे आनन्दमय ! हे देव-देव ! आपके चरण कमलों की योगीन्द्र पुरुष भी सदा वन्दना करते हैं, इस समय यदि आप मेरे प्रति दयालु हों तो हे नाथ ! कहिए—किस प्रकार उन भगवान् की उपासना करके उन सब जनों ने मुक्ति प्राप्त की थी ? ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

हैरण्यगर्भं सिद्धान्त रहस्यमनघे शृणु ॥२॥

ईश्वर बोले—हे पाप रहित! विश्व को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी ने इस विषय में जो सिद्धान्त गुप्त रक्खा था, उसको सुनो ॥२॥

यद्ज्ञात्वा मुच्यते मोहात् दौर्भाग्य व्याधिसाध्वसात् ।
भद्रे तदभिधास्यामि तत्सारग्राहिणी भव ॥३॥

जिसके जानने से जीव का दुर्भाग्य, व्याधि और अज्ञान जनित भय दूर हो जाता है। हे कल्याणि ! वही तुमसे वर्णन करता हूँ, तुम उसका मर्मार्थ ग्रहण करो ॥ ३ ॥

पूर्वं ब्रह्मा तपस्तेपे कल्पकोटि शतत्रयम् ।
मुनीन्द्रैर्बहुभिः सार्द्धं दुर्घर्षानिशनव्रतम् ॥४॥

पूर्व काल में ब्रह्मा जी ने तीन सौ करोड़ कल्प काल तक बहुत से मुनिगणों सहित असहनीय अनशन व्रत रूपी कठोर तपस्या की थी ॥ ४ ॥

पुरस्कृत्याग्नि मध्यस्थस्तदाराधन तत्परः ।
आदरातिशयेनास्य नैरन्तर्य्यार्चनादिना ॥५॥

चिराय देवदेवोऽपि प्रत्यक्षमभवत्तदा ।
किञ्च पुण्यातिरेकेण सर्वेषां तस्य च प्रिये ॥६॥

और [1]पंचाग्नि के मध्य में बैठकर उनकी आराधना में

---

१ पंचाग्नि—चारों ओर प्रज्वलित चार अग्नि और मध्य में सूर्याग्नि इसी पंचाग्नि द्वारा तपस्वी अपने को तपाते हैं। गरुड़ पुराण के अनुसार उदर की अग्नि का नाम गार्हपत्य, मध्यदेश की अग्नि का नाम दक्षिण मुख की अग्नि का नाम आहवनीय और मस्तक की अग्नि नाम सभ्य तथा पर्वा है। ये भी पंचाग्नि हैं, छान्दोग्य उपनिषद् के मत से स्वर्ग, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और योषात्मक, अग्नि तुल्य आहुति के आधार पदार्थ हैं।

तत्पर हुए थे। तब बहुत समय पीछे देव देव विष्णु जी ब्रह्मा जी का परमादर करके उनकी निरन्तर उपासना से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष प्रकट हुए। हे प्रिये ! भगवान् विष्णु जी के प्रकट होने की बात को ब्रह्माजी के पुण्य समूह के समान ही सर्व साधारण के भी पुण्य प्रभाव का कारण जानना चाहिये। (विष्णु जी जिस रूप में प्रकट हुए सो सुनो)

नवनीलाम्बुदश्यामः सर्वाभरण भूषितः।
शङ्ख चक्र गदा पद्म जटा मुकुट शोभितः ॥७॥

नवीन नील मेघ के समान श्यामकान्ति भगवान् समस्त आभूषणों से विभूषित होकर चारों भुजाओं में क्रमशः शंख चक्र–गदा और पद्म धारण किये हुए थे, उनके मस्तक पर जटा मुकुट शोभित था ॥ ७ ॥

किरीट हार केयूर रत्न कुण्डल मण्डितः।
सन्तप्त काञ्चनप्रख्य पीतवासो युगावृतः ॥८॥

उनके शिर पर किरीट (शिरो भूषण), कण्ठ में हार, भुजाओं में केयूर (बाजूबन्द) और कानों में रत्नजटित कुण्डल थे। वे तपे हुए सोने के समान आभा वाले युगल पीत वस्त्रों को धारण किये हुए थे ॥ ८ ॥

तेजोमयः सोमसूर्यं विद्युदुल्काग्निकोटयः।
मिलित्वाविर्भवन्तीह प्रादुरासीत् पुनः पुनः ॥९॥

वे कोटि – कोटि सूर्य, चन्द्र, अग्नि, उल्का और सौदा-

मिनी (बिजली) के सम्मिलित तेज के समान तेजोमय रूप से आविर्भूत हुए ॥ ६ ॥

स्तब्धीभूय तदा ब्रह्मा क्षणं तस्थौ विमोहितः ।
तुष्टाव मुनिभिः सार्द्धं प्रणभ्य च पुनः पुनः ॥१०॥

उनके इस रूप को देकर प्रजापति ब्रह्मा जी क्षण काल के लिये स्तब्ध प्राय होकर मोहाच्छन्न रहे फिर वारम्वार प्रणाम करके मुनियों के सहित स्तुति करने लगे ॥ १० ॥

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतार्थोऽस्मीह बन्धुभिः ।
प्रसन्नोऽसीह भगवन् सफलं जीवितं मम ॥११॥

हे भगवान् ! आप जो प्रसन्न हुए हैं इससे मैं धन्य और कृतकृत्य हुआ तथा बन्धुजनों सहित कृतार्थ हुआ । आज मेरा जीवन सफल हुआ ॥ ११ ॥

कथं स्तोष्यामि देवेश भगवन्निति चिन्तयन् ।
ऋग्यजुःसामवेदैश्च शास्त्रैर्वहुभिरादरात् ॥१२॥
साङ्गैर्मन्त्रादिभिर्धर्म प्रतिपादन तत्परैः ।
तुष्टावेश्वर मभ्यर्च्य सन्तुष्टो मुनिभिः सह ॥१३॥

हे देवेश ! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूं, यह विचार कर भी मैं निश्चय नहीं कर सका । ऐसा कह कर ब्रह्मा जी मुनिजनों सहित परम सन्तुष्ट होकर भगवान् की पूजा करके ऋक्, यजु और सामवेद तथा अन्याय शास्त्र एवं समस्त धर्म संस्थापक वेदाङ्ग के द्वारा पुनः स्तुति करने लगे ॥ १२-१३ ॥

त्वमेव विश्वतश्चक्षुर्विश्वतोमुख उच्यते ।
विश्वतोबाहुरेकः सन् विश्वतः पाति तत्परः ॥१४॥

आप विश्वरूप हैं, आपके सब ओर नेत्र, सब ओर बाहु और सब ओर ही मुख हैं। आप अकेले ही इस समस्त संसार का पालन करते हैं ॥ १४ ॥

जनयन् भूर्भुवर्लोकौ स्वर्लोकं सर्वशासकः ।
अक्षिभ्यामपि बाहुभ्यां कर्णाभ्यां भुवनत्रयम् ॥१५॥
पादाभ्यां नासिकाभ्याञ्च सर्वं सर्वत्र पश्यसि ।
सताधत्से शृणोष्येतत् सर्वं गच्छसि सर्वकृत् ॥
जिघ्रास्येवं न ते किञ्चदविज्ञातं प्रभोऽस्ति हि ॥१६॥

हे प्रभो ! आपसे ही इस भूलोक, भुवर्लोक (पृथ्वी और सूर्य का मध्य प्रदेश) और सुरलोक उत्पन्न हुए हैं, आप इन तीनों लोकों के शासक हैं। आप त्रिभुवन के समस्त स्थान नेत्रों द्वारा देखते हैं, दोनों भुजाओं द्वारा उनका पालन करते हैं, कानों द्वारा सुनते हैं, नासिका द्वारा सूंघते हैं और दोनों पैरों से गमन करते हैं। आपसे छिपा हुआ कुछ भी नहीं ॥ १५–१६ ॥

ब्रह्मा रुद्रश्च विष्णुश्च त्वमेव ननु केशव ।
सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ॥१७॥

हे केशव ! आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। आप ही सहस्त्र मस्तक सम्पन्न, सहस्त्र लोचन और सहस्त्र चरणशाली विराट पुरुष हैं ॥ १७ ॥

पृथिव्यप्तेजसांरूपं मरुदाकाशयोरपि ।
कार्यं कर्त्ता कृतिर्देवः कारणं त्वंहि केबलम् ॥१८॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों का स्वरूप भी आपसे प्रथक् नहीं है। हे नाथ! कार्य, कर्त्ता और उसके निर्माण का केवल एक मात्र कारण आप ही हैं ॥ १८ ॥

अणोरणीयान् महतो महीयान् मध्यतः स्वयम् ।
मध्योऽसि निर्विकल्पोऽसि कस्त्वां देवावगच्छति ॥१९॥

हे देव! आप सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम और स्थूल से भी स्थूलतम होकर स्वयं मध्य में विराजते हैं। आप ही मध्य और निर्विकल्प (विशेष्य विशेषणता सम्बन्ध शून्य) या कल्पना (भ्रान्ति) रहित हैं, आपके स्वरूप को कौन जान सकता है? ॥ १९ ॥

एवमादि बहुस्तोत्रैः स्तुतः स परमेश्वरः ।
वैदिकैः कृपया विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥२०॥

इस प्रकार अनेक वैदिक स्तवों के द्वारा भगवान् की स्तुति करने पर उन जगदीश्वर विष्णु ने दया के वशीभूत हो ब्रह्मा जी से यह कहा ॥ २० ॥

ततः स्तुष्टोऽस्मि ते ब्रह्मन्नुग्रेण तपसाधुना ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि कमलोद्भव ॥२१॥

हे कमल से उत्पन्न ब्रह्मन्! तुम्हारी कठोर तपस्या से आज

मै सन्तुष्ट हुआ हूँ, इस समय जो तुम्हारी अभिलाषा हो वह कहो, मै तुम्हें वही दूंगा ॥ २१ ॥

इत्युक्तः सोऽब्रवीत्तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२२॥

जब भगवान् विष्णु ने ऐसा कहा तब ब्रह्मा जी बोले ॥२२॥

तुष्टोऽसि यदि देवेश दास्यं मे स्वीकरिष्यसि ।
अभीष्टं देव देवेश यद्यस्ति करुणामयि ॥२३॥

हे देव देव ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए हैं और मुझ पर आप अत्यन्त दयालु हुए हैं तो आप मुझे अपना दास बना लीजिये, यही मेरी अभिलाषा है ॥ २३ ॥

असौभाग्येन दारिद्रयदुःखेनाहं सुदुःखितः ।
एते च मुनयो देव ये ये चात्यन्तदुःखिताः ॥२४॥

अभाग्यवश मैं दरिद्रता के दोष से बड़ा ही दुःख पा रहा हूँ और ये सब मुनिगण जो अत्यन्त दुःखी हैं ॥ २४ ॥

प्रतिभाति च दैवेन सर्वमस्माकमीदृशम् ।
किं कारिष्यामि देवेश ब्रू हि में पुरुषोत्तम ॥२५॥

ये सब आप देख ही रहे हैं, हमारी यह दशा प्रारब्ध के दोष से ही हुई है। हे पुरुषोत्तम ! अब हम सब सब क्या करें। सो कहिये ॥ २५ ॥

कामक्रोधादिदुर्ष्टाः सर्वास्ति मे प्रजाः ।
पूर्वार्जितैर्विशेषेण न किञ्चिदवशिष्यते ॥२६॥

मेरी उत्पन्न की हुई समस्त प्रजा भी पूर्व कुकर्म के फलस्वरूप काम–क्रोधादि दुष्ट शत्रुओं की ताड़ना से अत्यन्त मोहित हो रही है ॥ २६ ॥

को वोपायो यनुष्याणां भक्तानां भक्तवत्सल ।
एतच्छरीरपातान्ते नः परं मुक्तिसिद्धये ।
इहास्त्यस्माकमैश्वर्यं वैदुष्येष्टार्थसिद्धये ॥२७॥

हे भक्तवत्सल ! ऐसी दशा में भक्त मनुष्यों के लिये उत्तम उपाय क्या है ? सो कहिये। उनके ऐहिक ऐश्वर्य के सम्पर्क से इष्ट सिद्धि का मार्ग दूषित हो जाने के कारण इस शरीर के नष्ट हो जाने पर मुक्ति प्राप्त होने में अत्यन्त विघ्न उपस्थित हो रहा है। अतः अब आपका ही भरोसा है॥ २७ ॥

एवमुक्तः स देवोऽस्मै भुक्ति-मुक्ति प्रसिद्धये ।
किञ्चिद्विचार्य कृपया षडक्षर मुपादिशत् ॥२८॥

ब्रह्मा जी की यह बात सुनकर भगवान् विष्णु ने भोग और मोक्ष दोनों की सिद्धि के लिए कुछ क्षण विचार कर कृपा पूर्वक षडक्षर (छै अक्षर वाले–राम मन्त्र) का उपदेश दिया ॥२८॥

एकैक वर्णविन्यास क्रमञ्चाङ्गानि षट् पुनः ।
तद्विधिं ब्रह्मणे प्रादान्मन्त्रयन्त्राक्षराणि च ॥२६॥
रहस्यं देवदेवोऽपि तं मिथः समबोधयत् ॥३०॥

फिर मन्त्र के एक एक अक्षर को अलग अलग करके क्रम पूर्वक शरीर के छै अंगों की अंगन्यास विधि ब्रह्मा जी को बता

कर यन्त्राक्षर (यन्त्र और यन्त्र में कौन अक्षर कहां रक्खा जाय इस) का भी उपदेश दिया ॥२९॥ पीछे भगवान् विष्णु ने अत्यन्त गुप्त रीति से उन्हें मन्त्र का रहस्य भी समझाया ॥३०॥

तस्य तत्प्राप्तिमात्रेण तदानीमेव तत्फलम् ।
सर्वाधिपत्यं सर्वज्ञभावोऽप्यस्याभवत्तदा ॥३१॥

ब्रह्मा जी ने उस मन्त्र को पाने मात्र से उसी समय उसका फल हाथों हाथ पाया। वे मन्त्र बल से सबके अधिपति हो गये, उन्हें तत्काल सर्वज्ञता प्राप्त हो गई और वे भगवान् हो गये ॥ ३१ ॥

किञ्चास्य भगवत्वञ्च यदिष्टं तदभूदपि ।
सर्वेश्वर प्रसादेन तपसा किं न लभ्यते ॥३२॥

भगवान् ब्रह्मा जी की ओर जो कुछ भी अभिलाषा थी वह सब पूरी हो गई। जगदीश्वर की कृपा से उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया, तपोबल से क्या नहीं मिलता ? ॥ ३२ ॥

मुनीनामपि सर्वेषां तदा ब्रह्मा तदाज्ञया ।
उपादिदेश तं सर्वं ततस्तं विष्णुरब्रवीत् ॥३३॥

पश्चात् ब्रह्मा जी ने प्रभु विष्णु जी आज्ञा से समस्त मुनियों को भी उस मन्त्र का उपदेश दिया। तब भगवान् विष्णु ने उनसे कहा ॥ ३३ ॥

ऋषिर्भवास्य मन्त्रस्य त्वं ब्रह्मा सर्वमन्त्रवित् ।
रामोऽहं देवता छन्दो गायत्री छन्दसांयतः ॥३४॥

हे ब्रह्मन् ! तुम ही इस मन्त्र के ऋषि हो क्योंकि तुम्हें समस्त मन्त्रों का मर्म ज्ञात है। मैं श्रीराम का देवता हुआ, छन्दों में गायत्री प्रधान होने से इस मन्त्र की वही छन्द हुइ ॥ ३४

आन्तो यान्तो भवेद्बीज माद्य माद्य फलप्रदम् ।
नमः शक्तितयोद्दिष्टो नमोऽन्तो मन्त्रनायकः ॥३५॥

मन्त्र के आदि अक्षर में आकर और अनुस्वार युक्त करने से जो 'रों' पद होता है वही इस मन्त्र का बीज समस्त फल प्रदान करने में समर्थ है। 'नमः शब्द इस मन्त्र की शक्ति है, अतएव यह 'नमः' पद मन्त्रनायक 'रामाय' पद के अन्त में कहा गया।

रामाय मध्यमो ब्रह्मन् तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।
इह भुक्तिश्च मुक्तिश्च देहान्ते सम्भविष्यति ॥३६॥

हे ब्रह्मन् ! 'रामाय' पद को मध्य में रखकर अर्थात् 'रां रामाय नमः' मन्त्र से सब निवेदन करे। इस मन्त्र के अनुष्ठान से इस लोक में सुख भोग और देहान्त होने पर मुक्ति अवश्य ही प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥

यदन्य दप्यभीष्टं स्यात्तत् प्रसादात् प्रजायते ।
अनुतिष्ठदरेणैव निरन्तरमनन्य घीः ॥३७॥

यदि कुछ और भी अभिलाषा हो तो उसकी प्राप्ति के लिये एकाग्रचित्त से आदर पूर्वक निरन्तर अनुष्ठान करो, वह भी उनके प्रसाद से प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥

चिरं मदगतचित्तस्त्वं मामेवाराधयेश्चिरम् ।
मामेव मनसा ध्यायन् मामेवैष्यसि नान्यथा ॥३८॥

तुम मुझ में चित्त लगाकर दीर्घकाल तक मेरी ही आराधना करो। मेरा ही सदा मन में ध्यान करो, ऐसा करने से तुम मुझको पा सकोगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥

सूत्रं तद्देतद्विस्तार्य शिष्येभ्यो ब्रूहि गौरववात् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तत्रैव कमलेक्षणः ॥३६॥

और ये जो संक्षिप्त सूत्र रूप से उपदेश दिया है इसको तुम विस्तृत करके शिष्यों को गौरव पूर्वक उपदेश देते रहो। ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ३६ ॥

प्रजापतिश्च भगवान् मुनिभिः सार्द्धमन्वहम् ।
अन्वतिष्ठद्विधानेन निक्षिप्याज्ञां शिरस्यथ ॥४०॥

भगवान् प्रजापति ब्रह्मा जी ने भी भगवान् विष्णु जी की आज्ञा शिरोधार्य करके मुनियों के साथ नित्य विधि पूर्वक अनुष्ठान प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥

ब्रह्मा तदानीं सर्वेषामुपदेष्टा बभूवह ।
आर्ये तवापि तेनैव सर्वाभीष्टं भविष्यति ॥४१॥

तब से ही ब्रह्मा जी सर्वप्रथम इस मन्त्र के दीक्षागुरु हुए। हे आर्ये! तुम भी यदि इस मन्त्र का अनुष्ठान करोगी तो तुम्हारी भी सब अभिलाषाएं पूर्ण होंगी ॥ ४१ ॥

इति श्री अगस्त्य संहितायां पं० महावीरप्रसाद मिश्र कृत भाषाटीयां परम रहस्य कथनं नाम चतुर्थोध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

पुरातन पुराणज्ञ सर्वाख्यानार्थ वित्तम ।
ततः किमकरोद्विप्र श्रेष्ठागत्याम्बिका ततः ।
ईश्वरः केन रूपेण तामेव तदवोधयत् ॥१॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे प्राचीनतत्त ! आपको समस्त पुराणों का ज्ञान है और समस्त इतिहास के भी आप ज्ञाता हैं, अतएव कहिये—इसके पश्चात् सती श्रेष्ठ अम्बिका देवी ने क्या किया ? अथवा महादेव जी ने उन्हें किस प्रकार समझाया ? ॥१॥

अगस्त्य उवाच

तदादि हृदये रामं निधाय कमलेक्षणा ।
मुक्तये निश्चिनोतिस्म तमनन्य परायणा ॥२॥

अगस्त्य जी बोले—हे मुनिवर ! तब से कमलनयना शंकर पत्नी श्रीराम जी को हृदय में बसाकर, अन्य चिन्ता को छोड़ मुक्ति के लिए उनका ध्यान करने लगीं ॥ २ ॥

हैरण्यगर्भ सिद्धान्त रहस्य श्रवणात् परम ।
कामादिग्रस्तता तस्याश्चिरमेव व्यवर्त्तत ॥३॥

जब से उन्होंने ब्रह्मा जी के परम सिद्धान्त का रहस्य सुना तब से उनकी कामादि शत्रुओं की वश्यता दूर होगई ॥३॥

ईश्वरस्तां प्रियां सम्यक् ज्ञानमात्रेच्छयास्थिताम् ।
न्यवर्त्तत ततो ज्ञात्वा संसारोच्छित्तिशङ्कया ॥४॥

उस समय महेश्वर जी ने देखा कि पत्नी केवल ज्ञान पिपासा में पूर्ण रूप से तन्मय हो गई हैं, ऐसा जानकर संसार के नाश (सृष्टि के लोप) हो जाने की आशंका से—

तमब्रवीच्च भगवानीश्वरः सर्वरूपधृक् ।
मूलप्रकृतिरार्यं त्वं पुरुषोऽहं पुरातनः ॥५॥

सर्वस्वरूपी ईशानदेव ने उनसे कहा—हे आर्ये ! तुम मूल [1]प्रकृति हो और मैं पुरातन पुरुष हूँ ॥ ५ ॥

कारणं मगदुत्पत्तेरावां तदनवेक्षणम् ।
कुर्वहे स्यात्तदुच्छित्तिर्यदि किं तद्धितं तव ॥६॥

हम दोनों ही जगत की उत्पत्ति का एक मात्र कारण हैं यदि हम इस संसार की ओर एक वार भी दृष्टिपात नहीं करेंगे तब संसार का नाम लोप हो जाएगा । क्या तुम्हारी यही इच्छा है ? ॥ ६ ॥

१ मूल प्रकृति—सांख्य के मत से सबकी कारण भूता साम्यावस्थापन्ना सत्व, रज, तमोरूपा त्रिगुणात्मिका आद्यशक्ति, जिससे महत्तत्व प्रभृति समुदाय और जगत उत्पन्न होता है ।

कल्याणि मम किं तुल्यमावयोर्नतु तत्परम् ।
कार्यं हि कारणाभावे कुत्र सम्पद्यते वद ॥७॥

हे कल्याणि ! हमको केवल आत्म परायण होना उचित नहीं है, ऐसा होने से सृष्टि नहीं चलेगी । बोलो, कारण के अभाव में कार्य कैसे सम्पन्न हो सकता है ? ॥ ७ ॥

आवयोः सम्भविष्यन्ति सतोः कल्याणि देवताः ।
त्वत्प्रसादादिदं सर्व न कदाचिद्गमिष्यति ॥८॥

हे कल्याणि ! हम दोनों के कारण रूप में रहने से ही देवता उत्पन्न होंगे । और तव वे सब तुम्हारे अनुग्रह से कभी भी वाहर नहीं होंगे ॥ ८ ॥

एवञ्च सति किं देवि सर्वं त्यक्त मवेक्षसे ।
न युक्तमेतत् किमपि वक्तं देव्यधुना त्वया ॥९॥

हे देवि ! जब कि तुम ऐसा समझती हो तब ये सब तुम किस प्रकार छोड़ने को उद्यत हुई हो ? हे देवि ! तुम ऐसी बातें अब कभी नहीं कहना ॥ ९ ॥

इत्युक्ता साब्रवीद्देवी नीलोत्पलदलेक्षणा ।
प्राणनाथाधुना किं वै कर्तव्यमिति साब्रवीत् ॥१०॥

नीलकमल नयना भगवती ने यह सुनकर कहा—हे प्राण-नाथ ! आत्मा की प्रसन्नता के लिये इस समय क्या करना उचित है ? सो कहिये ॥ १० ॥

इयं सद्वासना मत्तो नैवोत्सन्ना भवेत् प्रभो।
कदाचिदपि देवेश त्वं तथानुगृहाण वै ॥११॥

हे प्रभो ! यह जो श्रेष्ठ वासना मुझमें उत्पन्न हुई है वह मुझको कभी भी न छोड़े। हे देवेश ! आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये ॥ ११ ॥

तथोक्तः सोऽब्रवीदेनां महीध्रतनयां पुनः।
श्रीरामाराधनं देवि तदमुं प्रतिवासरम् ॥१२॥

इस बात के उत्तर में महादेव जी ने पर्वततनया पार्वती जी से पुनः कहा—हे देवि ! तुम प्रतिदिन श्रीराम जी की आराधना किया करो ॥ १२ ॥

आराधयोपकरणैरन्यथा मा कृथाः प्रिये।
एतेनैवोभयं किञ्चिदिहामुत्र भविष्यति ॥१३॥

हे प्रिये ! उनकी आराधना के लिये अनेक प्रकार के उपकरण (सामग्री) संग्रह करो। सामग्री संग्रह न करने पर भी कोई हानि नहीं है, केवल उपासना से ही तुम्हें एहिक और पारलौकिक सन्तोष होगा ॥ १३ ॥

कलौ सङ्कीर्तनेनैव सर्वाघौघं व्यपोहति।
आराधनेन साङ्गेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१४॥

कलियुग में तो श्री रामचन्द्र जी के नामों का कीर्तन करने से ही समस्त पाप नष्ट हो जावेंगे। गन्ध, पुष्प अक्षत आदि

सामग्री से केवल साङ्गोपाङ्ग उपासना ही पूर्ण होती है (और कुछ नहीं) ॥ १४ ॥

किं वक्तव्यं प्रिये सर्वं मनसा चिन्तितञ्च यत् ।
एवमाराधनेनैव भवत्येव नचान्यथा ॥१५॥

हे प्रिये ! अधिक क्या कहूँ ? तुम मन में जो कुछ कामना करोगी वह इसी आराधना से पूर्ण हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥

न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मङ्गलं ।
प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना ॥१६॥

हे चन्द्रमुखि ! गृहस्थ व्यक्ति यदि केवल ज्ञान की ही खोज करता रहे और दान होमादि किसी कर्म का अनुष्ठान न करे तब वह इस देह और परदेह (मृत्यु के पश्चात् दूसरा शरीर धारण) किसी में भी मंगल प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

गृहस्थो यदि दानानि दद्यान्न जुहुयादपि ।
पूजयेद्विधिना नैव कः कुर्यात्तदनुग्रहम् ॥१७॥

गृहस्थी मनुष्य यदि केवल मात्र दान करता रहे और हवन न करे तथा यथाविधि पूजन भी न करे तब उस पर कौन अनुग्रह कर सकता है ? ॥ १७ ॥

न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनी ।
गृहिभ्योऽन्यत्र सर्वेभ्यः को वा दास्यत्यपेक्षितम् ॥१८॥

हे भामिनि ! ब्रह्मचारियों को दान करने का अधिकार नहीं है। गृहस्थी पुरुषों के अतिरिक्त और किसी को भी दान करना विहित नहीं है ॥ १८ ॥

नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे ॥१६॥

क्योंकि कलियुग में बनवासियों में दान करने की शक्ति ही कहां है ? ॥ १६ ॥

परिव्राड्ज्ञानमात्रेण दानहोमादिभिर्विना ।
सर्वदुःख पिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा ॥२०॥

चतुर्थ आश्रमी भिक्षुक (संन्यासी) दानहोमादि विना किये भी ब्रह्मानुसन्धान के बल से ही केवल ज्ञान प्राप्त करके समस्त दुःख रूपी पिशाचों के हाथ से निःसन्देह छुटकारा पा जाता है ॥ २० ॥

परिव्राड् विरक्तश्च विरक्तश्च गृही तथा ।
कुम्भीपाके निमज्जेते तावुभौ कमलानने ॥२१॥

हे कमलमुखि ! संन्यासी यदि विरक्त न हो और गृहस्थ व्यक्ति यदि विरक्त हो तो ये दोनों चाहे सत्कर्म ही क्यों न करें दोनों ही [1]कुम्भीपाक नरक में डूबते हैं ॥ २१ ॥

---

१ कुम्भीपाक—भागवत के अनुसार २१ नरकों में से एक नरक का नाम कुम्भीपाक भी है। जो उग्र पुरुष यहां अपना शरीर पालने के लिये सजीव पशु या पक्षी को मारकर उसका मांस खाता है वह व्यक्ति नराधम और निर्दयी है, राक्षस भी उसकी निन्दा करते हैं। इस कर्म के दोष से परलोक में यमदूत गण उसे कुम्भीपाक नरक में डालकर तपते हुए तेल में पकाते हैं ॥१२॥

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गले ! मङ्गलार्थिनः ।
पूजोपकर्णैः कुर्युर्द्युर्दानानि चार्हणाम् ॥२२॥

हे कल्याणि ! लक्ष्मीवान् गृहस्थ व्यक्ति मङ्गलाकांक्षी होकर अनेक सामग्रियों के द्वारा (श्रीराम जी की) पूजा करे और सब उत्तमोत्तम पदार्थ दान करे। २२ ॥

चन्दनागुरु-करतूरी सन्कपूर-हिमाम्बुभिः ।
पञ्चामृताभिषेकश्च पुष्पैस्तामरसैरपि ॥२३॥

प्रथम भगवान् को शीतल जल से स्नान कराकर अगर, कस्तूरी, कपूर मिश्रित चन्दन चढ़ावे फिर पञ्चामृत (दूध, दही, घृत, शक्कर और मधु) से अभिषेक करके कमल के पुष्प— ॥ २३ ॥

पुष्पमाल्यैश्च बहुभिर्दूर्वाभिश्चाक्षतैः सह ।
नीलोत्पलैर्मल्लिकश्च करवीरैश्च चम्पकैः ॥२४॥

अनेक प्रकार के फूलों की माला, दूर्वा (दूब) और अक्षत (चावल) सहित नील कमल, मालती पुष्प, कनेर पुष्प, चम्पा पुष्प—॥ २४ ॥

जातिप्रसूनैर्बिल्वैश्च पुन्नागैर्वकुलैरपि ।
कदम्बैः केतकैः पुष्पैः करुणाशोक किंशुकैः ॥२५॥

जाति पुष्प, बेल, पुन्नाग (नागकेशर), बकुल पुष्प, कदम्ब, केतकी, चमेली अशोक और पलाश के पुष्प—॥ २५॥

नागरङ्गादिपुष्पैश्च गन्धवद्भिर्मनोहरैः ।
प्रत्यग्रैः कोमलैश्चैव पूजयेयुः प्रयत्नतः ।।२६।।

तथा नागरङ्ग (नारंगी) आदि के पुष्प जो मनोहर गन्ध वाले, नवीन खिले हुए एवं कोमल हों उनसे यत्न पूर्वक श्रीराम जी की पूजा करे ।। २६ ।।

पल्लवश्चैव पत्रैश्च जलस्थल समुद्भवैः ।
एवमादिभिरण्यैश्च पुष्पैर्बहुभिरन्वहम् ।।२७।।

पल्लव पत्र (नूतन पत्र) एवं जल से उत्पन्न तथा स्थलोत्पन्न अन्याय सुन्दर पुष्पों के द्वारा भी—।। २७ ।।

कक्कोलैला पूगफलैस्तथा जातिफलैरपि ।
प्रत्याहृतैर्बहुविधैः पिष्टकैरिष्टसिद्धये ।।२८।।

कक्कोल काकला (गन्ध विशेष द्रव्य), इलायची, सुपारी जायफल या और पूरी आदि नाना प्रकार के व्यंजन अपनी इष्ट सिद्धि के लिए प्रतिदिन निवेदन करे ।। २८ ।।

क्षीर नीराज्य पक्वैश्च फलापूपवटादिभिः ।
दध्योदनान्न पानीय सूपादि व्यञ्जनैरपि ।।२९।।

दूध, जल और घृत के द्वारा पाक करके फल, अपूप (मालपुआ, पूरी अथवा रोटी) वट (बड़ियां आदि) अन्न और दही भात तथा पीने योग्य सूप (दूध, मैदा शक्कर और मेवा डालकर बनाई हुई लपसी अथवा भाव प्रकाश क मत से दाल) आदि व्यञ्जन —।।२९।।

शाटीपटोपदंशादि पदार्थैं वहुविस्तरैः ।
आरत्रिकैर्धूप दीपैः पडावृत्त्युप कल्पितैः ॥३०॥

और उपदंश (चटनी अचार) आदि तथा धोती–दुपट्टा आदि वहुत प्रकार के पदार्थ निवेदन करे, फिर आरती के निमित धूप–दीप छै बार घुमाकर दिखावे ॥ ३० ॥

वहुभिर्दीपमालाभि रर्चयेयुरहर्निशम् ।
कर्पूरचूर्ण सहितैस्ताम्बूलैश्च सुवासितैः ॥३१॥

अनेक प्रकार से दीपमाला भी सजावे जो दिन रात प्रज्व-लित रहे। फिर कपूर युक्त सुवासित ताम्बूल अर्पण करे ॥ ३१ ॥

महार्हैरर्हणां कुर्युः कल्याणार्थि तयान्वहम् ।
स्व स्व शक्त्यनुरूपेण सर्वान् सम्पाद्ययत्नतः ॥३२॥

इस प्रकार अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति उपरोक्त रूप से नित्य श्रीराम जी की पूजा करे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी २ शक्ति के अनुसार समस्त वस्तुएं यत्न पूर्वक संग्रह करे ॥ ३२ ॥

सम्यक् सम्पाद्य यत्नेन शक्त्या भक्त्या रघूद्वहम् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेयुरहर्निशम् ॥३३॥

अपनी शक्ति के अनुसार सव प्रकार से यत्न पूर्वक एवं भक्ति सहित रघुनायक श्रीरामचन्द्र जी की नित्य तीनों समय अथवा (गृह कार्यों से अवकाश न मिलने पर केवल एक ही समय पूजन करे ॥ ३३ ॥

गृस्थानां विधिरयं नेतरेषां शुभानने ।
दद्युर्दानानि जुहुयुरर्चितेऽग्नौ शुभार्थिनः ॥३४॥

हे शुभानने ! यह विधि गृहस्थों के लिये है दूसरों के लिए नहीं है। इसके पश्चात् दान करे और अपनी मंगल कामना के लिए पूजित अग्नि में हवन करे ॥३४॥

कल्याणञ्च वरारोहे रामार्पणधियान्वहम् ।
एवं गृहस्थनियमस्तथैव ब्रह्मचारिणाम् ॥३५॥

हे वरारोहे ! उपरोक्त पूजन आदि सब श्रीराम जी को अर्पण करने से कल्याण होता है जिस प्रकार यह गृहस्थ पुरुषों का नियम है उसी प्रकार ब्रह्मचारियों के लिए भी समझना चाहिए ॥३५॥

विधिमप्यनतिक्रम्य यथाशक्त्यनुसारतः ।
यदि कुर्युः प्रयत्नेन पूजां तत्साधनैरपि ॥३६॥

इस शास्त्र विधि को उलंघन न करके जैसी शक्ति हो उसके अनुसार पूर्वोक्त सामग्री के द्वारा यत्न सहित यदि पूजा की जाय तो—॥३६॥

सर्वं सम्पद्यते तेषां देवानां दुर्लभञ्च यत् ।
कल्याणि शृणु यद्वाक्यं यदि कल्याणमिच्छसि ॥३७॥

उस पूजा करने वाले की समस्त कामनायें देवताओं को दुर्लभ होने पर भी सिद्ध होती हैं। हे कल्याणि ! यदि तुम मंगल की कामना करती हो तो मेरी बात सुनो—॥३७॥

राममाराधयाद्यादि यावज्जीवं यथा विधि ।
एतेनैव वरारोहे कल्याणं तव सर्वदा ॥३८॥

पूर्व कथनानुसार इसी नियम से यथाविधि जीवनपर्यन्त श्रीराम जी की आराधना करने से, हे वरारोहे ! तुम्हारा सदैव कल्याण होगा ॥३८॥

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च तथैव ब्रह्मचारिण: ।
सगुणं राममाराध्य पूर्वोक्तैः साधनैरपि ॥३६॥

यदि पतिव्रता स्त्रियां, साधारण गृहस्थ और ब्रह्मचारी गण साकार—गुणमय श्रीराम जी की पूर्वोक्त साधनों के द्वारा उपासना करें ॥३६॥

शक्त्या सम्पादितैः केचित् पूजयेयुर्दिवानिशम् ।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवत्येव न चान्यथा ॥४०॥

अथवा अपनी शक्ति के अनुसार कुछ भी सामग्री एकत्रित करके दिन रात अर्थात् सदैव पूजन करें तो उनको ऐहिक भोगों की प्राप्ति और देहान्त के पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है, यह मिथ्या नहीं (सत्य) है ॥४०॥

वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येवं कुर्युरन्वहम् ।
संसारान्न निवर्त्तन्ते विध्यतिक्रमदोषतः ॥४१॥

यदि वानप्रस्थी और संन्यासी इसी नियम से नित्य उपासना करें तो उनके द्वारा निज शास्त्रोक्त विधि उलंघन करने के दोष से उनका संसार बन्धन नहीं छूट सकता ॥४१॥

आरूढ़पतिता ह्येते भवेयुर्दुःख भाजनाः ॥४२॥

वे ऊपर अधिष्ठित होते हुए भी नीचे गिर जाते हैं और सदैव दुःख भोगते हैं ॥४२॥

अहिंसा परमोधर्मस्तेषामेषा न पद्धतिः ।
न हिंसा व्यतिरेकेण लभ्यन्ते तानि-तानि वै ॥४३॥

क्योंकि (गृहस्थियों की नाईं उपासना करने से) उनके पक्ष में जो अहिंसा ही परमधर्म है यह पद्धति नहीं रहती । वे हिंसा के अतिरिक्त अपने अपने आश्रम का धर्म नहीं रख सकते ॥४३॥

भावनाकल्पितैः पूजासाधनैरेव युज्यते ।
न वहिर्योगयुक्तानामन्तस्तेषां प्रशस्यते ॥४४॥

उनके मन की भावना में कल्पित पूजा–साधन द्वारा आराधना हीं प्रशंसित हो जाती है । वे ती अन्तर्योग में ही अनुसार होते हैं, अतएव वहिर्योग में आसक्त होने पर उनकी अभीष्ट सिद्धि में वाधा पड़ती है ॥४४॥

एतच्छन्नधियामेव सेव्यसेवक रूपता ।
ध्यानमभ्यर्चनाद् भद्रे भद्रार्थफलदं भधेत् ॥४५॥

जिनकी बुद्धि मोहाच्छन्न है उनको ही भगवान् के साथ सेव्य–सेवक भाव से उपासना विहित है । हे कल्याणि ! यती इत्यादि के पक्ष में वाह्यपूजा की अपेक्षा ध्यान ही प्रशस्त है उसीसे उनको इष्टफल प्राप्त होता है ॥४५॥

आत्मन स्तत्वचिन्ता तु तस्यात्मनि विचिन्तयेत् ।
उभयोरैक्यचिन्ता च पुनरावृत्तये न तु ॥४६॥

कारण कि वे आत्मा के स्वरूप का चिन्तन ही अपने अन्तर में करते रहेंगे । आत्मा और परमात्मा का एकीभाव से चिन्तन होने पर उनको संसार में पुनः नहीं आना पड़ेगा ॥४६॥

आत्मानं सततं रामं सम्भाव्यं विहरन्ति ये ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ॥४७॥

जो वानप्रस्थी और संन्यासी श्रीराम जी को सदैव परमात्मा का स्वरुप समझकर आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं उनमें कोई भी पाप नहीं रहता और पापकर्म हो जाने से आपदा तथा विघ्न नहीं आते ॥४७॥

इति श्री अगस्त्य संहितायां पं० महाबीर प्रसाद मिश्र कृतभाषा टीकायां परमरहस्ये कथनं नाम पञ्चमाध्यायः ॥५॥



षष्ठोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किमेतद्भगवन् ब्रूहि हित्वा दध्योदनं रहः।
तक्रं पिबसि माहात्म्यं श्रीतुलस्याः क्व विस्मृतम् ॥१॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे भगवन् ! आप यह क्या कहते हैं ? दधि मिश्रित अन्न छोड़कर मट्ठा क्यों पिलाते हैं ? प्रधान बात श्री तुलसी के माहात्म्य का वर्णन आप क्यों भूलते हैं ? ॥१॥

अगस्त्य उवाच

शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं श्री तुलस्याः प्रयत्नतः।
पूर्वमुग्रं तपः कृत्वा वरं वव्रे मनस्विनी ॥२॥

अगस्त्य जी बोले—हे सुतीक्ष्ण ! मैं तुमसे श्री तुलसीदेवी का माहात्म्य यत्न पूर्वक वर्णन करता हूं, सुनो—पूर्वकाल में मानिनी तुलसी ने कठोर तपस्या करके भगवान् से जो वर प्राप्त किया था ॥२॥

तुलसी सर्वपुष्पेभ्यः पत्रेभ्यो वल्लभा तत् ।
विष्णोस्त्रलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा ॥
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैकपावनी ॥३॥

उसके फलस्वरूप जिस प्रकार तीनों लोकों के स्वामी विष्णु भगवान् अर्थात् श्रीराम जी को जनक पुत्री सीता जी प्यारी

हैं उसी प्रकार समस्त लोकों को पवित्र करने वाली केवल मात्र तुलसी देवी भी उनके लिये समस्त फूलों और पत्तों में प्रिय-तम हैं ॥३॥

तुलसीपत्रमात्रेण योऽर्चयेद्विष्णु मन्वहम् ।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥४॥

जो पुरुष केवल तुलसी पत्र ही अर्पण करके नित्य विष्णु भगवान् की पूजा करते हैं वे नित्य धाम ब्रह्म लोक को जाते हैं वहां से फिर संसार में आना नहीं पड़ता ॥४॥

नीलोत्पलसहस्त्रेण त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेद्धरिम् ।
फलं वर्षशतेनापि तदीयं नैव लभ्यते ॥५॥

जो व्यक्ति हजार नीलकमल प्रदान पूर्वक तीनों सन्ध्याओं में श्रीहरि भगवान् का पूजन करते हैं उसका फल सौ वर्ष में भी नहीं कहा जा सकता ॥५॥

विद्वन् सर्वेषु पुष्पेषु पङ्कजं श्रेष्ठमुच्यते ।
तत्पुष्पेष्वपि तन्माल्यं लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥६॥

हे शास्त्रदर्शी ! समस्त पुष्पों में कमल का पुष्प ही श्रेष्ठ कहा गया है, उसमें भी उन कमल पुष्पों की माला प्रदान करके पूजा करने से लाख-करोड़ गुना फल होता ॥६॥

विष्णोःशिरसि विन्यस्तमेकं श्रीतुलसीदलम् ।
अनन्तफलदं ब्रह्मन्मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥७॥

किन्तु हे ब्रह्मन् ! मन्त्रोच्चारण पूर्वक विष्णु भगवान् के मस्तक पर यदि एक भी तुलसी पत्र चढ़ाया जाय तो उसके फल की सीमा नहीं रहती ॥७॥

पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्मितं तुलसीदलैः ।
माल्यं मलयजालिप्तं दद्यात् श्रीराममूर्द्धनि ॥८॥

बीच बीच में भांति भांति के फूल गूंथ कर तुलसी पत्र की माला में चन्दन लगाकर यदि श्रीराम जी के मस्तक पर प्रदान करे ॥८॥

किं तस्य वहुभिर्यज्ञैः सम्पूर्णं वर दक्षिणैः ।
किं तीर्थ सेवया दानैरुग्रेण तपसापि वा ॥९॥

तो उसको वहुत दक्षिणा वाले वड़े-वड़े दीर्घकाल व्यापी यज्ञों के अनुष्ठान करने का क्या प्रयोजन है ? और तीर्थ यात्रा, दान तथा कठोर तपस्या की भी विशेष क्या आवश्यकता है ? ॥९॥

वाचं नियम्य चात्मानं मनो विष्णौ निवेश्य च ।
योऽर्चयेत्तुलसीमाल्यैर्यज्ञ कोटि फलं लभेत् ॥१०॥

वाणी संयम करके भगवान् में आत्मा तथा मन समर्पण कर यदि कोई तुलसी की मालाअर्पण करके उनकी पूजा करे तो उसे करोड़ यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१०॥

भवान्धकूपमग्नानामेतदुद्धार कारणम् ।
पत्रं पुष्पं फलञ्चैव श्रीतुलस्याः समर्पितम् ॥११॥

श्रीतुलसीपत्र, पुष्प तथा फल यदि भगवान् को समर्पण किये जायं तो केवल वही संसार रूपी अंधकारावृत्त गम्भीर कूप में निमग्न जीवों के उद्धार का कारण हो जाता है ॥११॥

रामाय मुक्तिमार्गस्य द्योतकं सर्वसिद्धिदम् ।
माल्यानि तनुते लक्ष्मीं कुसुमान्तरितानि च ॥
तुलस्याः स्वयमानीय निर्मितानि तपोधन ॥१२॥

हे तपोधन ! स्वयं यत्नपूर्वक तुलसी लाकर बीच-बीच में फूल लगाकर जो तुलसी की माला बनाई जाती है वह यदि प्रभु श्रीराम जी को अर्पण की जाय तो उससे लक्ष्मी बढ़ती है और समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं तथा मुक्ति मार्ग दिखाई देने लगता है ॥१२॥

तुलसीवाटिका यत्र पुष्पान्तर शतावृता ।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम् ॥१३॥

जहां असंख्य पुष्प वृक्षों के साथ तुलसी वाटिका विराजित है वहां स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्र, सीता जी सहित सदा ही बास करते हैं ॥१३॥

आरोपयन्ति ये भक्त्या स्वयमेव मनीषिणः ।
बनत्वेन समावृत्य कन्टकैस्तुलसीतरून् ॥
मोक्षाय च तदेवालं नान्यदभ्यर्हितं ततः ॥१४॥

जो महात्मा पुरुष स्वयं भक्ति पूर्वक तुलसी वाटिका रोपण (बोकर) कर उसके चारों ओर कांटों की बाड़ लगाकर रक्षा

करते हैं उनका यह कार्य ही मुक्ति का सहायक है। इसकी अपेक्षा उत्तम कार्य और कोई नहीं है ॥१४॥

शालग्रामशिलातोयं तुलसीदल वासितम् ।
ये पिवन्ति पुनस्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते ॥१५॥

जो पुरुष तुलसीदल सुवासित शालग्राम शिला का स्पर्श किया हुआ जल कण मात्र भी पान करते हैं उनको फिर देह धारण करके माता के स्तन पान करने की यातना भोगनी नहीं पड़ती अर्थात् उनका मोक्ष हो जाता है ॥१५॥

गाङ्गेयमिव तोयेषु शस्यते पूज्येष्वेव रघूत्तम : ।
सरोजमिव पुष्पेषु शस्यते तुलसीदलम् ॥१६॥

क्योंकि पवित्र जलों में जिस प्रकार गंगाजल श्रेष्ठ है और पूजनीयों में जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार समस्त पुष्पों में कमल के समान तुलसीपत्र श्रेष्ठ तथा प्रशंसनीय है ॥१६॥

सम्पूज्य भक्त्या विधिवद्रामं श्रीतुलसीदलैः ।
भवान्तर सहस्त्रेषु दुःख ग्रामाद्विमुच्यते ॥१७॥

भक्ति पूर्वक तुलसीपत्र द्वारा यथाविधि श्रीराम जी की पूजा करने से संसार के हजारों दुःख समूहों से मनुस्य मुक्त हो जाता है ॥१७॥

वर्णाश्रमेतराणाञ्च पूजा यस्यैवसाधनम् ।
अपेक्षितार्थदं वान्यज्जगत् स्वस्ति तपोधन ! ॥१८॥

हे तपोधन ! ब्राह्मणादि चारों वर्णो में जिस जिस आश्रम के यनुष्यों का पूजा करना ही प्रधान कार्य है उनको तुलसीपत्र द्वारा पूजा करने से अभीष्ट सिद्ध होता है। उनमें ज्ञानी जनों के पक्ष में सब ही कल्याण प्रद है ॥१८॥

पूजायोग्यै दलैः पत्रैः पुष्पैर्वा योऽर्चयेद्धरिम् ।
तानि न्यूनातिरिक्तानि कर्माणि सफलान्यहो ॥१६॥

पूजा के योग्य तुलसीदल, तुलसीपत्र वा पुष्पों के द्वारा जो श्री हरि की पूजा करेगा उसके इस कर्म में यदि कुछ पूजा की अंगहीनता की त्रुटि रह जाय अथवा कुछ अधिक हो जाय तो भी उसकी उपासना सफल होगी ॥१६॥

न तस्य नरकक्लेशो योऽर्चयेत्तुलसीदलैः ।
पापिष्ठो बाऽप्यपापिष्ठः सत्यं सत्यं न शसंयः ॥२०॥

जो मनुष्य तुलसीदल से श्रीहरि की पूजा करता है वह चाहे घोर पापी हो यो निष्पाप हो, उसे नरक की यातना भोगनी नहीं पड़ती, यह निःसन्देह सत्य है ॥२०॥

गङ्गातोयेन तुलसीदल युक्तेन योऽर्चयेत् ।
रामं निक्षिप्य शिरसि राममन्त्रेण सेचयेत्॥२१॥

इसी प्रकार जो व्यक्ति तुलसीदल युक्त गंगाजल से श्रीराम जी की पूजा करता है अर्थात् श्रीराम जी की मूर्ति को राम मंत्र उच्चारण पूर्वक स्नान कराता है ॥२१॥

निमील्य चक्षुषी धीरो रामं हृदि निधाय च ।
असकृद्वा सकृद्वापि य एव मनु तिष्ठति ॥
ध्येयो भवति सर्वेषामयमेव विमुक्तये ॥२२॥

तथा जो नेत्र बन्द करके प्रभु श्रीराम जी को हृदय में धारण करके धैर्य के साथ बैठता है और प्रतिदिन बहुत बार या कम से कम एक बार उनकी पूजा करता है वह सबका पूजनीय होता है। इसी को मुक्ति मार्ग का उपाय जानना चाहिए ॥२२॥

न सन्ति गुरवो यस्य नैव दीक्षाविधिक्रमः ।
रामाक्षरं वदन्नेव तुलसीदलमर्पयेत् ॥२३॥

जिसका मन्त्रोपदेष्टा गुरु नहीं है अथवा जिसने शास्त्रीय पद्धति से मन्त्र दीक्षा नहीं ली है वह यदि केवल 'राम' नाम उच्चारण करता हुआ प्रभु श्रीराम जी को तुलसी दल प्रदान करे तो—॥२३॥

दीक्षान्तरशतेनापि नैतत् फलमवाप्यते ।
दीक्षितेष्वपि सर्वेषु रामदीक्षित उत्तमः ॥२४॥

उसको जो फल प्राप्त होता है वह विभिन्न प्रकार की सौ दीक्षा लेने पर भी नहीं मिलता क्योंकि समस्त दीक्षित पुरुषों में राममन्त्र से दीक्षित पुरुष ही श्रेष्ठ है ॥२४॥

न गुरुर्नैव कालश्च न देवान्तरसेवनम् ।
तुलसीदलयुक्तञ्च रामर्चनमपेक्षते ॥२५॥

तुलसीदल युक्त श्रीराम जी की पूजा में न गुरु की आवश्यकता है न समय असमय का प्रयोजन है और न पवित्र स्थान की ही आवश्यकता है ॥२५॥

निर्माल्य तुलसीमाला युक्तो यद्यर्चयेद्धरिम् ।
यद्यत्करोति तत्सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥२६॥

निर्माल्य (भगवान् पर चढ़ी हुई) तुलसी की माला धारण करके यदि कोई श्रीहरि की पूजा करे तो वह जो भी कार्य करे वह सब अनन्त फलदाती होता है ॥२६॥

यदि न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम् ।
तुलसीपत्रमात्रेण युक्तं तत् परिपूर्यते ॥२७॥

प्रभु श्रीराम जी की पूजा सामग्री में यदि कुछ कमी हो फिर भी उसमें एक मात्र तुलसी पत्र मिल जाने से वह सामग्री पूर्ण हो जाती है ॥२७॥

शालग्रामशिलायाश्च गङ्गायाश्च तपोधन ।
तुलस्याश्चैव माहात्म्यं नेष्टे वक्तुं हि विश्वसृक् ॥२८॥

हे तपोधन ! शालग्रामशिला, गङ्गा जी और तुलसी की महिमा सम्यक रूप से वर्णन करने में विश्व को सृजन करने वाले ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥२८॥

भवभञ्जनमेतत्ते सर्वाभीष्टं प्रयच्छति ।
नातः परतरं किञ्चित्पावनं विद्यते भुवि ॥२६॥

यह भवबन्धन को काटने वाली (साक्षात् मुक्ति प्रदायिनी तुलसी देवी) तुम्हारी सम्पूर्ण अभिलाषाओं को पूर्ण करेगी। संसार में तुलसी की अपेक्षा पवित्र वस्तु दूसरी कोई नहीं है ॥२९॥

यः कुर्यात्तुलसीकाष्ठैरक्षमालां सुरूपिणीम् ।
कर्णमालाञ्च यत्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत् ॥३०॥

जो मनुष्य यत्न पूर्वक तुलसीकाष्ठ की सुन्दर जप माला और कानों में पहनने की माला धारण करते हैं उनका किया हुआ थोड़ा कर्म भी अक्षय फल प्रदान करता है ॥३०॥

संघृष्य तुलसीकाष्ठं यो दद्याद्राम मूर्द्धनि ।
कर्पूरागरुकस्तूरी चन्दनञ्च न तत्समम् ॥३१॥

यदि कोई व्यक्ति तुलसीकाष्ठ घिसकर चन्दन के समान श्रीराम जी के मस्तक पर लगावे तो उसका असीम फल होता है। इसके सामने कपूर, अगर, कस्तूरी और चन्दन लगाना अत्यन्त तुच्छ है ॥३१॥

तुलसीविपिनस्यापि समन्तात्पावनं स्थलम् ।
क्रोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयस्यैव पाथसः ॥३२॥

गंगा जल के समान तुलसी वन के चारों ओर एक कोश परिमित स्थान को पवित्र जानना चाहिये ॥३२॥

तुलस्यारोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा च पावयेत् ।
आराधिता प्रयत्नेन सर्वकामफल प्रदा ॥३३॥

तुलसी वृक्ष के लगाने से और उसके वृक्ष में जल सींचने से अथवा तुलसी को स्पर्श करने से और तुलसी का दर्शन करने से भी तुलसी उसको पवित्र कर देती हैं। और यदि यत्न सहित उनकी आराधना की जाय तो वे समस्त अभीष्ट फल प्रदान करती हैं ॥३३॥

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रयमाणां विशेषता ।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणाञ्च पूजितेष्टं ददाति हि ॥३४॥

चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) के ही स्त्री और पुरुष जो कोई भी तुलसी की पूजा करता है, तुलसी उसी की कामना पूर्ण करती हैं ॥३४॥

प्रदक्षिणं भ्रमित्वा तु नमस्कुर्वन्ति नित्यशः ।
न तेषां दुरितं किञ्चित् प्रदक्षिणमवशिष्यते ॥३५॥

जो पुरुष प्रतिदिन तुलसी की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करते हैं उनके समस्त पापों का नाश हो जाता है, कोई भी पाप शेष नहीं रहता ॥३५॥

अनन्यदर्शनां प्रातर्ये पश्यन्ति तपोधन ।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणात् प्रदहन्ति ते ॥३६॥

हे तपोधन ! जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर और किसी ओर दृष्टिपात न करके तुलसी का ही प्रथम दर्शन करते हैं उनके दिन रात के संचित पाप तत्काल भस्म हो जाते हैं॥३६॥

तुलसी सन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर ।
न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमं पदम् ॥३७॥

हे मुनीश्वर! जो मनुष्य तुलसी के सन्मुख प्राण त्याग करते हैं उनको नरक की यातना भोगनी नहीं पड़ती । वे परमपद को गमन करते हैं ॥३७॥

विधेयमविधेयं वा न्यूनमप्यथवाऽधिकम् ।
तुलसीदलमादाय रामं ध्यात्वा समर्पयेत् ॥३८॥

यथाविधि पूजा हो वा अविधि पूर्वक ही हो, अंगहीन पूजा हो वा सर्वांगपूर्ण पूजा हो, प्रभु श्रीराम जी का ध्यान करके उनके मस्तक पर तुलसीदल चढ़ावे ॥३८॥

रामाय नम इत्येतदच्युताय नमस्ततः ।
अनन्ताय नमस्मस्मात् प्रणवादि वदेदिदम् ॥३९॥

'ॐ रामायनमः, यह उच्चारण करके अथवा ॐ अच्युताय नमः' अथवा ॐ अनन्ताय नमः' इतना ही उच्चारण करके तुलसीदल चढ़ावे ॥३९॥

कृतं सफलतामेति तुलसीसन्निधौ मुने ।
तदेव पुण्यकालेषु सहस्रगुणितं भवेत् ॥४०॥

हे मुनीश्वर ! तुलसी के समीप जिस समय जो भी कृत्य किया जाय, सब सफल होगा, यदि वही कर्म पुण्यकाल में किया जाय तो सहस्त्रगुणा फल होता है ॥४०॥

शालग्रामशिलायाश्च तुलस्याश्चैव सन्निधौ ।
येषां पुण्यवतां मृत्युस्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥४१॥

शालग्रामशिला या तुलसी के समीप जिस पुण्यात्मा की मृत्यु हो वह मुक्ति लाभ करता है, इसमें किञ्चित भी सन्देह नहीं ॥४१॥

इति श्री अगस्त्य संहितायां पं० महाबीर प्रसाद मिश्र कृतभाषा टीकायां परमरहस्ये कथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

अगस्त्य वद मे सर्वं रामस्य मुनिसत्तम् ।
मन्त्रराजस्य माहात्म्यं यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥१॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ! पहले ब्रह्माजी के मुख से आपने जिस प्रकार सुना था वही आज भगवान् श्री रामचन्द्र जी के मंत्रराज की महिमा पूर्णरूपेण मुझसे कहिये ॥१॥

अगस्त्य उवाच

सर्वं तथाभिधास्यामि पुरारेः पुरतः पुरा ।
ब्रह्मा यदब्रवीत्तत्त्वं शृणुष्व चरितं महत् ॥२॥

अगस्त्य जी बोले—पहले प्रजापति ब्रह्मा जी ने महादेव जी से जिस प्रकार कहा था, वही इस समय मैं तुमसे अति श्रेष्ठ मन्त्र की महिमा कहता हूं, सुनो ।।२।।

अस्ति वाराणसी नाम पुरी शिवमनोहरा ।
सर्वदापि शिवस्तत्र पार्वत्या सह तिष्ठति ।।३।।

वाराणसी नाम की एक मनोहर शिवपुरी है, वहां देवाधिदेव शिवजी पार्वती सहित सदैव ही निवास करते है ।।३।।

तस्याप्युपासकाः सर्वे भक्त्या तं प्रतिपेदिरे ।
मुमुक्षवः परित्यज्य सर्वन्तत्रैव संस्थिताः ।।४।।

उनके भक्त भी मोक्षमार्ग के पथिक हो सर्वस्व त्याग कर प्रभु की उपासना में मन लगाते हुए इसी काशीपुरी में सदैव वास करते हैं ।।४।।

सदा शिव शिवेत्येवं वदन्तः शिवतत्पराः ।
शिवार्पित मनः प्राणवाचः शिवपरायणाः ।।५।।

वे परम शैव भक्त जन सर्वतोभाव से श्री महादेव जी के चरणों में मन, प्राण समर्पण करके सदा ही मुख से केवल 'शिव-शिव' उच्चारण करते हुए आनन्द से समय व्यतीत करते हैं ।।५।।

शिवोऽपि तान् मुहुः पश्यन्नास्ते चिन्तासमाकुलः ।
कथमेभ्यः प्रदास्यामि मुक्तिमित्यतिदुःखितः ।
तथैवास्ते गणैः सार्द्धंमृषिभिश्च सुरासुरैः ।
एवञ्च सति भूर्लोक माजगाम चतुर्मुखः ।।६।।

भगवान् शिव भी निरन्तर भक्तजनों का ऐसा भाव देखकर किस प्रकार इनको मुक्ति दूँ ? इस विचार से चिन्तित हो अपने अनुचर प्रथमगण, ऋषि तथा देव-दानवों के साथ होने पर भी वे महादुखो रहने लगे। उसी समय एक दिन चतुर्मुख ब्रह्मा जी अपनी इच्छा से भूर्लोक में भगवान् शंकर के निकट उपस्थित हुए ॥६॥

तमीश्वरो निरीक्ष्यैव सम्भ्रमेणाकरोत् प्रियम् ।
बहु सम्भावयामास यद्धितं तन्न्यवेदयेत् ॥७॥

महादेव जी ने ब्रह्मा जी को देखते ही आदर पूर्वक प्रिय जनों की कुशल वार्त्ता पूछ कर उनका बहुत सम्मान किया और अपने हित की बात उनसे निवेदन की अर्थात् कही ॥७॥

ततः स्मप्राह भगवानीश्वरस्तं चतुर्मुखः ।
कुशलं ननु हे ब्रह्मन् चिराय त्वमिहागतः ॥८॥

भगवान् महादेव जी ने ब्रह्मा जी से कहा—हे विधे ! आप कुशल तो हैं ? बहुत समय पीछे आप यहां आये हैं ॥८॥

श्रीमदागमनेनाहं लोकपूज्योऽस्म्युपासकैः ।
समाराध्येऽमां मुक्तिं प्रार्थयन्ति सुमुक्षवः ॥९॥

आपके शुभागमन से मैं लोक के सन्मुख भक्तजनों के द्वारा पूजित हुआ हूँ। देखिए—ये मोक्षाभिलाषी भक्त जन मुक्ति लोभ के लिए यहाँ सदैव मेरी आराधना करते हैं ॥९॥

केनोपायेन तेषां तत्फलं दास्यामि तद्वद ।
ईश्वरेणैवमुक्तः सन् द्रुहिणोऽपि बभाण तम् ॥१०॥

मैं किस उपाय से इनको वह मोक्षपद प्रदान करूं ? सो कहिए। प्रजापति ब्रह्माजी ने आदि देव शंकर जी के इस प्रकार जिज्ञासा करने पर कहा—॥१०॥

अस्त्युपायो गोपनीयः प्रादाद्यन्मे रघूत्तमः ।
ततः कृत्वा चिरायाहं तं परं लब्धवान् परम् ॥११॥

इसका एक अत्यन्त गुप्त उपाय है जो मुझे स्वयं श्री रघुनाथ जी ने प्रदान किया (बताया) था। जिसका अनुष्ठान करके मैंने वह परमतत्त्व पाया है ॥११॥

अतोऽन्यो मदभिज्ञातो नास्त्युपायो महेश्वर ! ।
मह्यमन्वग्रहीद्रामो न सन्देहोऽस्ति तत्र वै ॥१२॥

हे महेश्वर ! उसके अतिरिक्त मैं और कोई उपाय नहीं जानता। भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्र जी ने मेरे ऊपर यह कृपा की थी, इसमें सन्देह नहीं ॥१२॥

ईश्वर उवाच

अथ किं मे वदस्वैदं त्वं मां यद्यनुकम्पसे ।
स तेनाभिहितो दध्यौ क्व कदा युक्तमित्यपि ॥१३॥

महादेव जी बोले—हे ब्रह्मन् ! यदि आप मेरे ऊपर कृपा करें तो बताइये, उसका उपाय क्या है ? तब ब्रह्मा जी ने किस स्थान में किस समय क्या उपाय करना चाहिए ? इसको कुछ क्षण विचार कर—॥१३॥

पुण्यतीरे च गङ्गायां लोलार्के सूर्यपर्वणि ।
तस्मै मन्त्रवरं प्रादान्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥१४

गंगा जी के पवित्र तट पर सूर्य ग्रहण के समय महादेव जी को षडक्षर मंत्रराज का उपदेश दिया ॥१४॥

नियतः सोऽपि तत्रैव जजाप वृषभध्वजः ।
मन्वन्तरशतं भक्त्या ध्यानहोमार्चनादिभिः ॥१५॥

वृषवाहन शंकर दीक्षित होकर एकाग्र मन से उसका जप करने लगे । उन्होंने सौ मन्वन्तर तक भक्ति पूर्वक ध्यान, पूजा और होमादि कार्य किए ॥१५॥

ततः प्रसन्नो भगवानामः प्राह त्रिलोचनम् ।
शृणुष्व यदभीष्टं ते देवानामपि दुर्लभम् ॥१६॥

तव भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने प्रत्यक्ष होकर त्रिलोचन महादेव जी से कहा—हे शंकर ! सुनिये-यद्यपि आपकी अभिलाषित वस्तु देवताओं को भी दुर्लभ है ॥१६॥

तदेवाहं प्रदास्यामि मा चिरं वृषभध्वज ।
ततस्तमब्रवीद्विष्णुमीश्वरः परया मुदा ॥१७॥

तथापि हे वृषभध्वज ! मैं आपको वह शीघ्र ही प्रदान करूँगा। तब महादेव जी ने परमानन्दित हो भगवान् विष्णु जी से कहा—॥१७॥

दर्शनेनैव ते धन्यः कृतार्थो न ममेप्सितम् ।
एते मदीयाः सर्वेऽपि मां परं पर्युपासते ॥१८॥

आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ एवं धन्य हो गया, मुझे अपने लिये कुछ भी इच्छा नहीं है। ये जो मेरे भक्त मेरी उपासना करते हैं ॥१८॥

मुक्त्यर्थं तत् कुरुष्वैषां तदेवाभिमतं मम ।
नातः परतरं किञ्चित् प्रार्थितं मम विद्यते ॥१६॥

वे मुक्ति के इच्छुक हैं, हे प्रभो! आप उनकी इच्छा पूर्ण करें। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहता ॥१६॥

एवं वदति तत्रैव तदानीं तदुपासकाः ।
सर्वे ज्योतिर्मयाः सन्तो विष्णोरेव लयं गताः ॥२०॥

ऐसा कहते ही शिवजी के वे समस्त भक्त ज्योतिर्मय रूप को प्राप्त होकर भगवान् विष्णु में ही लीन हो गए ॥२०॥

ततःप्रोवाच रामस्तं पुनरिष्टं यदस्ति ते ।
तद्वदीश्वर तद्दास्ये प्रार्थना दुर्लभञ्च यत् ॥२१॥

अनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने महादेव जी से फिर कहा—यदि आपकी और कुछ प्रार्थना हो तो वह भी कहिए, वह दुर्लभ होने पर भी आपको प्रदान करूँगा ॥२१॥

इत्युक्तः स पुनर्वव्रे हितकृद्भक्तवत्सलः ।
सर्वलोकोपकाराय सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥२२॥

यह बात सुनकर जगत के हितैषी, भक्तवत्सल, आशुतोष महादेव जी ने समस्त जगत के उपकार के लिए अत्यन्त दुर्लभ यह वर माँगा कि—॥२२॥

स्वतो वा अन्यतो वापि यत्र कुत्रापि वा प्रभो ।
प्राणान् परित्यजन्त्यत्र मुक्तिस्तेषां फलं भवेत् ॥२३॥

हे प्रभो ! जो कोई भी मनुष्य स्वभाविक नियम से अथवा अविधि पूर्वक इस काशीक्षेत्र में प्राण त्याग करे वह अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर सके ॥२३॥

गङ्गायां वा तटे वापि यत्र कुत्रापि वा पुनः ।
म्रियन्ते ये प्रभो देव मुक्तिर्नातो वरान्तरम् ॥२४॥

हे प्रभो! यहां गंगा जी के किनारे अथवा इस काशी क्षेत्र में कहीं भी मृत्यु होने पर मनुष्य मुक्त हो सके, यह आदेश दीजिए। इसके अतिरिक्त और कोई वर नहीं चाहता ॥२४॥

श्रीराम उवाच

क्षेत्रऽत्र तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः ।
कृमि चीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥२५॥

श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे देवेश ! आपके इस काशी क्षेत्र में जहां कहीं भी मनुष्य अथवा कृमि, कीट आदि कोई भी जीव हो, वह प्राण त्याग करते ही मुक्त होगा। इसमें सन्देह नहीं ॥२५॥

शूद्रो वा ब्राह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मृत्वा मां प्राप्नुवन्ति ते ॥२६॥

शूद्र हो अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो, जो कोई इस षडक्षर मंत्र (ॐ नमो रामाय) का जप करेगा उसको जीवित अवस्था में ही मन्त्र की सिद्धि होगी और मृत्यु होने पर वह मुझे प्राप्त करेगा ॥२६॥

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्च्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन शङ्कर ।
अहं सन्निहितस्तस्य पाषाणप्रतिमादिषु ॥२७॥

हे शंकर ! इस काशी क्षेत्र में जो व्यक्ति मेरा यह मन्त्र जपेगा उसकी भक्ति से मैं पाषाण की प्रतिमा में भी नित्य उपस्थित रहूँगा ॥२७॥

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि तन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥२८॥

हे शिव ! यदि किसी अधम व्यक्ति के मरण समय भी उसके दाहिने कान में यह मंत्र सुना दिया जायगा तो वह इस संसार बन्धन से छूट जायगा ॥२८॥

इत्युक्तवति देवेश पुनरप्याह शङ्करः ।
महान् ममाभिमानोऽत्र क्षेत्रे त्रैलोक्यदुर्लभे ॥२६॥

श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार कहने पर महादेव जी ने पुनः कहा । हे नाथ ! इस काशी क्षेत्र में मेरा बड़ा ही आदर है। आपके प्रसाद से आज से यह क्षेत्र तीनों लोकों में अतीव दुर्लभ हुआ ॥२६॥

फलं भवतु देवेश सर्वेषां मुक्तिलक्षणम् ।
मुमूर्षूणाञ्च सर्वेषां दास्ये मन्त्रवरं परम् ॥३०॥

हे देवेश ! सबको मुक्ति फल प्राप्त हो, इसलिए मैं मुमुर्षु जीवों को परम मुक्ति दायक यह अति उत्तम मंत्र स्वयं प्रदान करूंगा ॥३०॥

इत्येवमीरितो विष्णुस्तस्मै दत्वा वरान्तरम् ।
यदभीष्टं पुनस्तस्य तत्रैवान्तरधीयत् ॥३१॥

भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर विष्णु भगवान् महादेव जी को और भी अभीष्ट वर प्रदान करके अन्तर्धान हो गए ॥३१॥

तदादि तदभून्मुक्तिक्षेत्रं त्रैलोक्यपावनम् ॥३२॥

तब से यह काशीधाम त्रैलोक्य में अत्यन्त पवित्र मुक्ति क्षेत्र हुआ है ॥३२॥

तत्र तिष्ठन्ति ये भक्त्या यावज्जीवं नियम्य ते ।
मुक्ति भोजो भवन्त्येव सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३३॥

जो पुरुष वहां भक्ति सहित यावज्जीवन संयमी होकर वास करते हैं वे सत्य–सत्य ही मुक्ति लाभ करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥३३॥

इतिश्री अगस्त्य-संहितायां पं० महावीरप्रसाद मिश्र कृत भाषा टीकायां परम रहस्य कथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अष्टमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

कथं तन्त्रवरं भूमौ केन चादौ प्रतिष्ठितम् ।
तदादि देशकः कस्मै तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे तपोधन ! इस श्रेष्ठ मन्त्र को प्रथम कौन व्यक्ति इस मर्त्यलोक में किस कारण से लाया था और किसने प्रथम उपदेश दिया था ? वह सब मुझसे कहिये ॥१॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्मा ददौ वसिष्ठाय स्वसुताय मनुं पुनः ।
स वेदव्यास मुनये ददावित्थं गुरुक्रमः ॥२॥

अगस्त्य जी ने कहा—हे महाभाग ! प्रथम प्रजापति ब्रह्मा जी ने अपने मानस पुत्र वशिष्ठ जी को इस मंत्र का उपदेश दिया, फिर वशिष्ठ जी ने वेदव्यास मुनि को दिया । यही मंत्र की गुरु परम्परा है ॥२॥

वेदव्यासो महातेजाः शिष्येभ्यः समुपादिशत् ।
गुरु शिष्य गुणानादौ शौनकाया ब्रवीन्मुनिः ॥३॥

(भगवान् वेदव्यास जी के मुख से ही प्रथम यह मंत्र मृत्यु-लोक में प्रकाशित हुआ) उन ब्रह्म तेज से देदीप्यमान द्वैपायन व्यास जी ने शिष्यों को जो उपदेश दिया था । उनमें महर्षि सूत

जी ने प्रथम गुरु-शिष्य के गुणों की कथा शौनक मुनि से कही थी ॥३॥

स शौनकेन स्पृष्टः सन्नाह मन्त्रान्तराणि च ।
मंत्रपूजाविधिमपि होमं तर्पणलक्षणम् ॥४॥

शौनक जी के पूछने पर (सूतजी ने) अन्यान्य मंत्रों के साथ इस मंत्र की भी पूजाविधि, होमविधि, तर्पण का लक्षण—॥४॥

पुरश्चरणसंख्याञ्च होमद्रव्यान्तरानि च ।
जपस्थानानि सिद्धिञ्च यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ।
तत्तदुक्तं प्रवक्ष्यामि यदि श्रोतुमिहेच्छसि ॥५॥

पुरश्चरण की संख्या तथा होम साधन वस्तु जात का निर्देश, जप करने के सब स्थान और किस रीति से जप करने पर सरलता पूर्वक सिद्धि मिल सकती हैं ? यह सब जैसा कि पूर्व में ब्रह्मा जी ने कहा था (महर्षि सूत जी ने ठीक वैसा ही कहा था) यदि आप सुनने की इच्छा करें तो मैं भी आज आपसे वही सब ज्यों का त्यों कहूंगा ॥५॥

सुतीक्ष्ण उवाच

सतां सन्दर्शनं लोके तर्पयत्येव मङ्गलम् ।
मन्दभाग्योऽप्यहं कस्मात् श्रोता कल्प्येत्वयाधुना ।
मुनिवर्याधुनैव त्वं यदुक्तं तत् प्रबोधय ॥६॥

सुतीक्ष्ण जी बोले— हे तपोधन ! साधु पुरुषों के दर्शन ही मंगल कारक हैं फिर भी आपने मुझ अभागे को इस समय श्रोता

रूप में कैसे कल्पना की ? (यह मैं नहीं समझ सका) हे मुनिवर! ब्रह्माजी ने जिस प्रकार कहा था, वह अब आप मुझे बताइये ।।६।।

अगस्त्य उवाच

देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निस्पृहः ।
अध्यात्मविद् ब्रह्मवादी वेदशास्त्रार्थकोविदः ।।७।।

अगस्त्य जी बोले— हे महाभाग ! जो देवोपासक शान्ति गुणावलम्बी है जो विषयों की भी आकाँक्षा नहीं रखता, जो आत्मज्ञानी, ब्रह्मवादी, तथा वेदशास्त्रों के अर्थ (मर्म) को जानने वाला विद्वान् है ।।७।।

उद्धर्त्तं चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः ।
तत्वज्ञो यन्त्रमन्त्राणां धर्मवेत्ता रहस्यवित् ।।८।।

वही ब्राह्मण श्रेष्ठ उद्धार और संहार करने में समर्थ हो सकता है ।तथा जो तत्वज्ञ, एवं धर्म वेत्ता समस्त मंत्र और यंत्रों के रहस्य को जानता है ।।८।।

पुरश्चरणकृत् सिद्धो मंत्र सिद्धः प्रयोगविद् ।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ।।६।।

जिसने पुरश्चरण करके मंत्र की सिद्धि प्राप्त कर ली है, जो शास्त्रोक्त अनुष्ठान जानता है एवं जो तपस्वी, सत्यवादी और गृहस्थ धर्म के पालन करने में तत्पर है, वही गुरु हो सकता है ।।६।।

आस्तिको गुरुभक्तश्च जिज्ञासुः श्रद्धया सह ।

कामक्रोधादि दुःखोत्थवैराग्यो वनितादिषु ।।१०।।

जो व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को मानने वाला, गुरु भक्त और श्रद्धा पूर्वक मंत्र शास्त्र के विषय को जानने का उत्सुक है, जिसने काम क्रोधादि शत्रुओं से दुःख पाया है, जिसको स्त्री आदि भोग साधन से वैराग्य हो गया है ।।१०।।

सर्वात्मना तितीर्षुश्च भवाब्धेर्भव दुःखितः ।

ब्राह्मणो मोक्षधर्मार्थी कामार्थी विगतस्पृहः ।।११।।

जो संसार से दुखित हो कर सब प्रकार से भवसागर से पार होने की कामना रखता है ।और जो पुरुष ब्राह्मण होकर मोक्ष और धर्म के लिये स्पृहा रहित होकर काम की इच्छा रखता है ।।११।।

किम्वा धर्मार्थमोक्षार्थी निष्कामश्चाथवा पुनः ।

मनोवाक्कायचित्तेन नित्यं शुश्रुषको गुरौ ।।१२।।

अथवा निष्काम भाव से धर्म अर्थ और मोक्ष के लिये काय, मनो, वाक्य के द्वारा एकाग्रचित्त से नित्य गुरु की सेवा करता है ।।१२।।

स्व वर्णाश्रम धर्मोक्त कर्मनिष्ठः सदाशुचिः ।

शुचिव्रततमाः शुद्धा धार्मिका द्विजसत्तमाः ।।१३।।

जो अपने जातिधर्म के पालन में तत्पर रहता है । और सदा पवित्र रहता है । ऐसा पवित्रतम व्रतचारी, शुद्ध एवं धार्मिक द्विज श्रेष्ठ ।।१३।।

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्तं सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ॥१४॥

पतिव्रता स्त्री तथा अन्यान्य प्रतिलोम (क्षत्रिय के औरस से ब्राह्मणी के गर्भजात के अनुसार क्रम से जिस वर्ण का बीज हो उससे उच्चवर्ण की स्त्री से उत्पन्न) अनुलोम (क्रमानुसार ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के औरस और क्षत्रिय स्त्री आदि के गर्भ) से उत्पन्न संकर जाति और चाण्डाल पर्यन्त नीच जाति के लोग भी समान रूप से अधिकारी हैं ॥१४॥

स्वाजाति धर्मनिरता भक्ताः सर्वेश्वरस्य ये ।
उपदेशक्रमस्तेषां स्व स्व-जात्यनुसारतः ॥१५॥

जो मनुष्य सर्वेश्वर प्रभु के भक्त होकर अपनी जाति के धर्म का पालन करते हैं उनकी निज निज जाति के अनुसार ही उपदेश की परिपाटी नियत है ॥१५॥

अलसा मलिनाः क्लिष्टा दाम्भिकाः कृपणास्तथा ।
दरिद्रा रोगिणो रुष्टा रोगिणो भोगलालसा ॥१६॥

जो पुरुष आलसी, अत्यन्त मलिन रहने वाला, अहंकारी, कंजूस, दरिद्रता से पीड़ित रहने वाला, रोगी रहने वाला, भोग-विलास में अनुरक्त रहने वाला ॥१६॥

असूया मत्सरग्रस्ताः शठाः परुषवादिनः ।
अन्यायोपार्जित धनाः परदाररताश्च ये ॥१७॥

दूसरों के गुणों में दोषारोपण करने वाला - दूसरों से द्वेष रखने वाला, धूर्त, कठोर वचन बोलने वला, अन्याय से धन कमाने वाला, पराई स्त्री में अनुरक्त रहने वाला,—॥१७॥

विदुषां वैरिणश्चैव अज्ञाः पण्डितमानिनः ।
भ्रष्टव्रताश्च ये रुष्टमतयः पिशुनाः खलाः ॥१८॥

और विद्वानों का बैरी, मूर्ख, अपने को पण्डित मानने वाला, भ्रष्टाचारी, क्रोधी बुद्धि वाला, चुगलखोर, दुष्ट—॥१८॥

बह्वाशिनः क्रूरचेष्टा दुरात्मानश्च निन्दिताः ।
इत्येवमादयोऽप्यन्ये पापिष्ठाः पुरुषाधमाः ॥१९॥

बहुत भोजन करने वाला, क्रूर चेष्टा वाला, दुरात्मा, सब की निन्दा करने वाला, ये सब आदि से अन्त तक कहे हुए पापात्मा अधम (नीच) पुरुष हैं ॥१९॥

कुकृत्येभ्यो निवार्याश्च गुरुशिष्याः सहिष्णवः ।
एवंभूताः परित्यज्याः शिष्यत्वेनोप कल्पिताः ॥२०॥

यदि ऐसा गुरु या शिष्य मिल जाय तो सहनशीलता से गुरु शिष्य के और शिष्य गुरु के कुकृत्यों को दूर करने का प्रयत्न करे। यदि ऐसा शिष्य बिना जाने बना लिया हो तो उसे त्याग देना चाहिये ॥२०॥

यद्यते ह्युपकल्पेरन् देवताक्रोशभाजनाः ।
भवन्तीह दरिद्राश्च पुत्रदारविवर्जिताः ॥२१॥

यदि उक्त प्रकार के व्यक्ति को दुरात्मा जान कर भी शिष्य बना लिया जाय तो वह गुरु देवता के कोप का पात्र होगा और स्त्री-पुत्र विहीन होकर दरिद्रता भोगेगा ।।२१।।

नारकाश्चैव देहान्ते तिर्यक्षु प्रभवन्ति ते ।।२२।।

और देहान्त होने पर नरक भोग करके पक्षी योनि में जन्म लेगा ।।२२।।

ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः ।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम ।।२३।।

हे मुनिवर ! जो पापी अधम पुरुष गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करते, उनका नरक यातना से निस्तार नहीं होता ।।२३।।

क्षुब्धाः प्रलोभिता स्तै स्तैर्निन्दितानादिशन्ति च ।
विनश्यत्येव तत्सर्वं सैकते शालिबीजवत् ।।२४।।

और अशान्त या दुखित गुरु लोभ के वशीभूत होकर उस निन्दित शिष्य को जो कुछ आज्ञा देते हैं वह आज्ञा रेतीली भूमि में बोए हुए धान्य बीज के समान नष्ट हो जाती है ।।२४।।

यैः शिष्टैः शश्वदाराध्य गुरवो ह्यवमानिताः ।
पुत्रमित्रकलत्रादि सम्पद्भ्यः प्रच्युता हि ते ।।२५।।

जो सज्जन पुरुष निरन्तर आराधना करते रहने पर भी यदि कदाचित् गुरु का अपमान करें तो वे उस पाप के कारण स्त्री, पुत्र, मित्र, आदि से तथा धन सम्पत्ति से हीन हो जाते हैं ।।२५।।

अधिक्षिप्य गुरुं मोहात् परुषं प्रवदन्ति ये।
शूकरत्वं भवत्येव तेषां जन्मशतेष्वपि ॥२६॥

जो पुरुष मोह के वशीभूत होकर गुरु का अनादर कर कठोर वचन कहते हैं वे सौ जन्म तक शूकर होकर घूमते रहते है ॥२६॥

ये गुरुद्रोहिणो मूढाः सततं पापकारिणः।
तेषाञ्च तावत सुकृतं दुष्कृतं स्यान्न संशयः ॥२७॥

जो मूढ़ गुरु द्रोही होकर सदैव पाप संचय करते हैं उनके पूर्वोपार्जित समस्त पुण्य निश्चय ही पाप रूप में परिणत हो जाते हैं ॥२७॥

तारादिर्मुक्तये लक्ष्मीबीजादिर्भुक्तये तथा।
वाक्सिद्धये च वाग्बीजं प्रणवान्ते विनिक्षिपेत् ॥२८॥

(हे सुतीक्ष्ण !) तार वीज 'ॐ' मुक्ति के लिये है, लक्ष्मी वीज 'श्रीं' भोग के लिये है और वाग् वीज 'ऐं' वाक्सिद्धि के लिए है, जिन्हें प्रणव के अन्त में लगाना चाहिये ॥२८॥

मान्मथं सर्ववश्याय तदेतत्त्रितयं पुनः।
तारान्ते चैव रामादौ सर्वार्थं विनियोजयेत् ॥२९॥

मान्मथ (काम) वीज क्लीं लगाने से सबको वश में किया जाता है और तार वीज ॐ के अन्त में श्रीं ऐं क्लीं ये तीनों प्रकार के वीज राम शब्द से पहले लगाने से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है ॥२९॥

रामायनम इत्येष मन्त्रः पञ्चाक्षरो मतः ।
रामित्येकाक्षरो मन्त्रो राम इत्यपरो मनुः ॥३०॥

'रामाय नमः' यह पञ्चाक्षरी मंत्र कहलाता है, इसमें एका-क्षर बीज 'रां' लगा देने से दूसरा छै अक्षर का राम मन्त्र (रां रामाय नमः) बन जाता हैं ॥३०॥

चन्द्रान्तश्चैव भद्रान्तः पुनर्द्वेधा बिभज्यते ।
रामश्च चन्द्र-भद्रन्तश्चतुर्थ्यन्तो हृदा सह ॥३१॥

फिर यह मन्त्र चन्द्रान्त और भद्रान्त से दो प्रकार का हैं । राम पद के अन्त में चन्द्र या भद्र की चौथी विभक्ति लगाकर नमः सहित (रां रामचन्द्राय नमः अथवा रां रामभद्राय नमः) कहे ॥३१॥

सकाम-शक्ति-वाक्-लक्ष्मी-ताराद्यः पञ्चवर्णकः ।
षडक्षरः षडविधः स्याच्चतुर्वर्ग फलप्रदः ॥३२॥

काम बीज क्लीं, शक्ति बीज ह्सौं, वाक् बीज ऐं, लक्ष्मी बीज श्रीं अथवा ह्रीं, तार बीज ॐ ये पाँच वर्ण हैं । इन वर्णों में से एक-एक वर्ण पंचाक्षरी मन्त्र 'रामाय नमः' के आदि में लगाने से षडक्षर मन्त्र छै प्रकार का हो जाता है ॥३२॥

लक्ष्मी वाङ्मन्मथादिश्च सर्वत्र प्रणवादिकः ।
पञ्चाशत मातृका मन्त्रवर्ण प्रत्येक पूर्वकः ॥३३॥

इन लक्ष्मी, वाक्, कामादि बीजों के आदि में सर्वत्र प्रणव (ॐ) लगाना चाहिये । इसके अतिरिक्त पचास मातृका वर्ण

अनुस्वारान्त करके पंचाक्षरी मंत्र के पूर्व एक-एक करके लगाने से—॥३३॥

एकधा च द्विधा-त्रेधा-चतुर्धा पञ्चधा तथा ।

षट् सप्तधाष्टधा चैव बहुधाऽयं व्यवस्थितः ॥३४॥

एक, दो, तीन, चार, पाँच छै, सात, आठ आदि बहुत से होने की व्यस्था है । जैसे 'अं रामाय नमः' 'कं रामाय नमः' इत्यादि ॥३४॥

बहुधा विद्यते तार सहितोऽयं षडक्षरः ॥३५॥

यह षडक्षर मन्त्र तार बीज ॐ सहित बहुत प्रकार का हो जाता है ॥३५॥

मन्त्रोऽयमुपदेष्टव्यो ब्राह्मणाद्यनुरूपतः ।

सम्पूज्य विधिवत्तत्र संस्थाप्य कलसं नवम् ॥३६॥

इन मन्त्रों का उपदेश ब्राह्मणादि श्रेष्ठ वर्ण के अनुसार देना चाहिये । मन्त्र देने के समय नवीन कलश स्थापित करके उसमें इष्ट देवता की विधिवत पूजा करे ॥३६॥

तत्सामर्थ्यानुरूपेण मृत्सुवर्णमयं तथा ।

दात्रा प्रदीयते यद्वन्मन्त्रो देयस्तथा मुने ॥३७॥

वह कलश अपनी सामर्थ्य के अनुसार मिट्टी से सुवर्ण तक का हो सकता है । हे सुतीक्षण ! दाता जिस प्रकार प्रसन्न मुद्रा से दान करता है उसी प्रकार गुरु शिष्य को मन्त्र प्रदान करे ॥३७॥

इति श्री अगस्त्य संहितायां मुरादाबाद निवासी साहित्यरत्न पं० महाबीर प्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां परमरहस्ये कथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किं तन्यन्त्रं वद ब्रह्मन् स्वरूपं तस्य चानघ।
कैर्मन्त्रैर्वा कथं कुत्र लेख्यं किं तेन वा भवेत् ॥१॥

सुतीक्ष्ण जी बोले—हे ब्रह्मन् ! यन्त्र कैसा होता है और उसका स्वरूप क्या है ? एवं उसमें कौन-कौन मन्त्र कहाँ किस भाव से लिखना होगा और यन्त्र का प्रयोजन ही क्या है ? सो कहिये ॥१॥

अगस्त्य उवाच

मनोरथकराण्यत्र नियन्त्यन्ते तपोधन।
काम क्रोधादिदोषात्थ दीर्घयन्त्रनियन्त्रणात्॥२॥

अगस्त्य जी बोले—हे तपोधन ! मनोरथ पूर्ण करने के लिये काम क्रोधादि दोषों से उत्पन्न दीर्घ यन्त्रणा से मन का नियन्त्रण (संयम) किया जाता है, इसी से इसका नाम यन्त्र है ॥२॥

यन्त्र मित्याहु रे तस्मिन्नामः प्रीणाति पूजितः ॥३॥

यन्त्र में श्री राम जी की पूजा करने से वे विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं ॥३॥

यन्त्रं मन्त्रमयं प्राहुर्देवता मन्त्ररूपिणी।
यन्त्रेणापूजितो रामः सहसा न प्रसीदति ॥४॥

यन्त्र मन्त्र मय ही होता है, मन्त्र रूपी यन्त्र में देवता का आवाहन न करके पूजा करने से श्रीं रामचन्द्र जी सहसा ही प्रसन्न नहीं होते ।।४।।

श्रीरामः पूजितो यन्त्रे सीतया सह यन्त्रितः ।
यदिष्टं तत् करोत्येव तत्तन्मन्त्र वराद्दते ।।५।।

यन्त्र में श्री रामचन्द्र जी की पूजा करने से वे सीता जी के सहित वहाँ बंध जाते हैं । उस समय जिस मंत्र का जप किया जाता है वह अभीष्ट फलप्रद होता है ।।५।।

शरीरमिव जीवस्य रामस्य मनुरुच्यते ।
यन्त्रेमन्त्रं समाराध्य यदभीष्टं समाप्नुयात् ।।६।।

शरीर के साथ जीव के समान राम के साथ मन्त्र का सम्बन्ध है । यन्त्र में मन्त्र द्वारा आधना करने से अभीष्ट लाभ होता है ।।६।।

यन्त्रस्वरूपं वक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणापुरा ।
आदौ षट्कोण मुद्धृत्य ततो वृत्तं लिखेत्पुनः ।।७।।

अब मैं यन्त्र का स्वरूप कहता हूँ जैसा कि पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने कहा था । प्रथम एक षट्कोण बनावे फिर उसके बाहर एकवृत्त बनावे ।।७।।

दलानि विलिखेदष्टौ ततः स्याच्चतुरस्त्रकम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं व्यक्तं सर्वमनोहरम् ।।८।।

फिर (उसके आगे) आठ दल (पत्ते) बनाकर बाहर चतुष्कोण बनावे। इस प्रकार सर्व लक्षण सम्पन्न सब प्रकार से मनोहर यन्त्र बनावै ॥८॥

तदन्तरेऽपि सुव्यक्तं साध्याख्याकर्मगर्भितम् ।
तद्बीजं विलिखेद् भूयस्तत् क्रोडीकृत मन्मथम् ॥६॥

इसके पश्चात् मध्यस्थल में इष्ट देवता का नाम और अभिलाषित कर्म का नाम लिखे। फिर काम बीज क्लीं भी लिखना चहिए अर्थात् 'ॐ क्लीं रामाय नमः लिखे ॥६॥

ततस्तत्पञ्चबीजानि पुनर्यथावर्त्तयन्मुने ।
पुनर्दशाक्षरेणैव तदेव परिवेष्टयेत् ॥१०॥

फिर अंकित वृत्त में पूर्वोक्त पञ्चबीज लिखकर 'हूं जानकी वल्लभाय स्वाहा' इस दशाक्षरी मंत्र से वेष्टित करे ॥१०॥

षडङ्गान्यग्निकोणादि कोणेत्वेवं क्रमाल्लिखेत् ।
तथा कोणकपोलेषु ह्रीं श्रीं च विलिखेन्मुने ॥११॥

फिर अग्निकोण आदि समस्त कोणों में 'रां रामाय नमः' इस प्रकार क्रमशः छै षडङ्ग मन्त्र लिखकर कोणों के कपोल में ह्रीं और श्रीं मन्त्र लिखना चाहिए ॥११॥

ह्रीं बीजं प्रतिकोणाग्रं केशराग्रेषु च स्वरान् ।

मालामन्त्रस्य वर्णाःस्युश्चत्वारिंशच्च सप्त च ।
वर्णाः सप्तदलेष्वेवं षट् षट् पञ्चान्तिमे दले ॥१२॥

तथा प्रत्येक कोण के अग्रभाग में ह्रीं बीज और केशर के अग्रभाग में स्वर लिखे। फिर सात दल में से प्रत्येक दल में छै-छै वर्ण और अन्तिम आठवें दल में पांच वर्ण, इस प्रकार माला मंत्र के सैंतालीस वर्ण लिखे ॥१२॥

पूर्वतो वेष्टयेत् काद्यैस्तत्सर्वञ्च तपोधन ॥१३॥

हे तपोधन ! इससे क इत्यादि के वर्णों द्वारा पूर्वादि क्रम से सबका वेस्टन हो जायगा ॥१३॥

दिग्विदिक्ष्वपि पूर्वस्मात् भूगृहे चतुरस्रके ।
बीजद्वयञ्च विलिखेन्नरसिंह–वराहयोः ॥१४॥

और पूर्वादि क्रम से चारों दिशाओं में तथा चारों कोनों में नरसिंह और वराहदेव के दोनों बीज भी लिखे ॥१४॥

यन्त्रेऽस्मिन् सम्यगाराध्य भुक्तिमुक्तिञ्च विन्दति ॥१५॥

इस यन्त्र से श्री रामचन्द्र जी की सम्यक् आराधना करने पर इस लोक में सुख और देह त्याग के पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५॥

यद्वा तारं लिखेन्मध्ये षट्कोणेष्वपि च क्रमात् ।
मूलमन्त्राक्षराण्येव सन्धिष्वङ्गञ्च मन्मथम् ॥१६॥

अथवा इसके अतिरिक्त मध्य में तार बीज ॐ और षट्कोणों में क्रमशः षडक्षर मंत्र का प्रत्येक वर्ण लिखे। फिर यन्त्र के सन्धि स्थानों में काम बीज क्लीं और मूल मन्त्र रां रामायनमः' के अक्षर क्रम पूर्वक लिखे ॥१६॥

नायां गण्डेषु किञ्जल्के स्वराणां लेखनं मतम् ।
पत्रेषु पूर्ववन्माला मन्त्रोल्लेखः क्रमेण हि ।१७।

कपाल देश में ऐं वीज और केशर में स्वरवर्ण लिखने चाहिये और पत्तों में पूर्ववत् मालामन्त्र के वर्ण क्रम से लिखने चाहिये ॥१७॥

दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादीनि व्यजनानि च ।
दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजं नरसिंह—वराहयोः ॥१८॥

और उन 'क' इत्यादि व्यंजनाक्षरों को दशाक्षर मंत्र से वेष्टन करके सब दिशाओं और सब कोणों में नरसिंह और वाराहदेव के दो बीज लिखे ॥१८॥

एतद्यन्त्रान्तरं चात्र साङ्गावरणमर्चयेत् ।
सौवर्णे राजते भूर्जे लिखित्वार्चनमारभेत् ॥१९॥

यह जो भिन्न प्रकार के यन्त्र की वात कही गयी है इसमें अङ्ग देवता और आवरण देवता के सहित श्री रामचन्द्र जी की पूजा करे । यह यन्त्र सुवर्ण, चांदी अथवा भोजपत्र पर लिखकर पूजा प्रारम्भ करे ॥१९॥

हूं जानकी वल्लभाय स्वाहा क्षौं हूं च विनिर्दिशेत् ।
दशाक्षरो नृसिंहस्य वराहस्य मनुः स्मृतः ॥२०॥

'हूं जानकी वल्लभाय स्वाहा' यही श्री रामचन्द्र जी का दक्षाक्षर मंत्र है और क्षौं तथा हूं इन दोनों को क्रमशः नृसिंह और वराहदेव के वीज मंत्र जानना चाहिये ॥२०॥

श्रीं ह्रीं क्लीं ॐनमो ब्रूयात्ततो भगवते पदम् ।
रघुनन्दनाय पदं ब्रूयाद्रक्षोघ्न विषदाय च ॥२१॥

प्रथम श्रीं ह्रीं क्लीं ये कई बीजकह कर 'ॐ नमो भगवते, उच्चारण करे। फिर 'रघुनन्दनाय, और 'रक्षोघ्न विपदाय, ये दो पद उच्चारण करके—॥२१॥

मधुरेति प्रसन्नेति वदनाय पदं वदेत् ।
विशेषणं पञ्चमञ्च ब्रूयादमिततेजसे ॥२२॥

फिर 'मधुर प्रसन्न वदनाय' और 'अमित तेज से' ये पाँचो विशेषण उच्चारण करे ॥२२॥

ततो बलाय रामाय विष्णवे नम इत्यथ ।
माला मन्त्रोऽयमुद्दिष्टो नृणां चिन्तामणिः स्मृतः ॥२३॥

फिर बलाय रामाय विष्णवे नमः ये उच्चारण करने से ही माला मंत्र हो जाता है यह मनुष्य के लिये अमूल्य चिन्तामणि मंत्र जानना चाहिये ॥२३॥

श्रीं सीतायै वह्निजाया सीतामन्त्र उदाहृतः ।
यन्त्रेऽस्मिन्नाममाराध्य साङ्गावरण मादरात् ॥२४॥

और श्रीं सीतायै स्वाहा यह सीता मंत्र है। पूर्वोक्त मन्त्र से इस यन्त्र में अंग देवता और आवरण देवता के साथ श्री रघुनाथ जी की आदर पूर्वक आराधना करे ॥२४॥

आराध्यगुलिकी कृत्य धारयेद्यन्त्र मन्वहम् ।
दारिद्रय दुःख शमनं पुत्र पौत्रप्रदं तथा ॥२५॥

प्रतिदिन इस यन्त्र में प्रभु का आवाहन करके शरीर में धारण करने से दारिद्रय दुःख छूट जाता है और पुत्र पौत्र प्राप्त होते हैं ॥२८॥

ऐश्वर्यं कृद्वश्यकरं रोग शोकनिवारणम् ।

विद्याप्रदं सौख्यकरं शत्रुसंहार कारकम् ॥२६॥

यह मंत्र उपासक को ऐश्वर्य प्रदान करके शोक रोगादि भी दूर कर देता है। मूर्ख को विद्वान् बनाता है और शत्रुओं का संहार कर डालता है ॥२६॥

पराभिचार कृत्येषु वज्र पञ्जर मुच्यते ।

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदं मुने ॥२७॥

विशेष कहने से क्या, इससे सभी सुख मिलते हैं अधिकतर दूसरे को वशीभूत करने आदि अभीष्ट कार्य में वज्र की समान सहायक होता है। हे मुनिवर ! ये मंत्र सभी सिद्धियों को देने वाला है ॥२७॥

इति श्री अगस्त्य-संहितायां मुरादाबाद निवासी साहित्यरत्न पं० महावीर प्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां परमरहस्ये कथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥६॥



दशमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

पूजा विधानं वक्ष्यामि नारदाभिहितञ्च यत् ।
बाल्मीकये मुनीन्द्राय द्वार पूजादिकं यथा ।।
आकर्ण्य मुनि श्रेष्ठ सर्वाभीष्ठ फल प्रदम् ।।१।।

अगस्त्य जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं आपसे भगवान् श्री रामचन्द्र जी की पूजा का विधान वर्णन करता हूँ । पूर्वकाल में देवर्षि नारद जी ने मुनिवर बाल्मीकि जी से जिस प्रकार द्वार पूजा के सहित पूजा प्रणाली कही थी । यह सब ही अभीष्ट फल देने वाला है, आप उसको सुनिये ।।१।।

श्रीराम द्वार पीठाङ्ग परिवारतया स्थिताः ।
ये सुरास्तानिह स्तौमितन्मूलाः सिद्धयो यतः ।।२।।

जो देवता श्री रामचन्द्र जी के द्वार पीठ के अंग और उनके परिवार रूप में गिने जाते हैं । उन देवताओं की पहले पूजा करनी चाहिये । क्योंकि सिद्धि लाभ करने में वे भी मूल कारण हैं ।।२।।

वन्दे गणपतिं भानुं त्रिलोक स्वामिनं शुभम् ।
क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधाता रमनन्तरम् ।।३।।

प्रथम कहे कि मैं पहले विघ्नों का नाश करने वाले गणेश जी की और तीनों भुवन के ईश्वर मंगलमय दिवाकर (सूर्य), क्षेत्रपाल , पृथ्वी, विधाता और फिर । ३॥

गृहाधीशं गुहं गङ्गां यमुनां कुल देवताम् ।
चण्डप्रचण्डौ च तथा शङ्ख पद्मनिधी अपि ॥४॥

गृहाधीश (वास्तुदेव) एवं कार्त्तिकेय, गंगा, यमुना और कुलदेवता की तथा चण्ड प्रचण्ड शंख और पद्मनिधी ॥४॥

वास्तोस्पतिं द्वारलक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम् ।
एताः सम्पूज्य भक्त्याहं श्रीराम द्वार देवताः ॥५॥

इन्द्र, द्वारलक्ष्मी, गुरु और वागीश्वर की भक्ति सहित पूजा करता हूं क्योंकि यही प्रभु के द्वार देवता हैं ॥५॥

महामण्डूक कालाग्नि रुद्राभ्यां प्रणमाम्यहम् ।
आधारशक्ति कूर्माभ्यां नागाधिपतये तथा ॥६॥

फिर कालाग्नि और रुद्र के साथ महामण्डूक को प्रणाम करता हूं । आधार शक्ति कूर्म तथा नागराज (अनन्तदेव), ॥६॥

पृथिव्यै च तथा लक्ष्म्यै सागराय नमो नमः ।
श्वेतद्वीपाय रत्नाद्रौ कल्पवृक्षाय ते नमः ॥७॥

पृथ्वी, लक्ष्मी, और सागर को बारम्बार नमस्कार है । तथा श्वेतद्वीप और रत्नगिरि के कल्पवृक्ष को नमस्कार है ॥७॥

सुवर्णमण्ड पायाथ पुष्पकाय महार्हते ।
विमलायाष्टरत्नाय सम्यक् सिंहासनाय च ॥८॥

सुवर्ण मण्डप और श्रेष्ठतम पुष्पक विमान को नमस्कार है। फिर विमल अष्ट रत्न और रत्न सिंहासन को नमस्कार करके—

उद्यदादित्य संशोभि पद्माय तदनन्तरम् ।
नमामि-धर्म-ज्ञानाभ्यां वैराग्यायाग्नितः क्रमात् ॥९॥

नवोदित दिवाकर की किरणों से खिले हुए पद्म कुसुम को नमस्कार करके अग्निकोण से आरम्भ करके पूर्व दिशा पर्यन्त क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य — ॥९॥

ऐश्वर्याय नमोऽधर्माज्ञानाभ्यां पूर्वतस्तथा ।
अवैराग्याय च तथाऽनैश्वर्याय नमो नमः ॥१०॥

और ऐश्वर्य, को नमस्कार करके अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य को बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

अं अर्क मण्डलायाऽमुपर्युपरि सर्वदा ।
सत्त्वाय रजसे नित्यं तमसेऽपि नमो नमः ॥११॥

फिर ऊर्द्ध दिशा में अं मन्त्र पहले उच्चारण कर सूर्य मण्डल को नमस्कार करता हूँ ऐसा कहकर सत्व, रज, और तम को बार–बार नमस्कार करता हूँ ऐसा कहे ॥११॥

उं चन्द्रमण्डलायेति ध्यात्वा ध्यात्वा नमाम्यहम् ।
ममग्नि मण्डलायेति सम्पूज्येव प्रयत्नतः ॥१२॥

इसी प्रकार' उं चन्द्रमण्डलाय नमः कहकर चन्द्र को और 'मं' वह्नि मण्डलाय नमः कहकर अग्नि को बार-बार ध्यान पूजा करके प्रणाम करता हूँ ऐसा कहे ॥१२॥

विमलोर्त्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगाभ्य इत्यापि ।
नमामि प्रह्वीसत्याभ्यामीशानायै दलान्तरे ॥
पूर्वादितोऽनुग्रहायै प्रणमामि तदन्तरे ॥१३॥

और उस पद्म के आठों दलों में पूर्वादि क्रम से विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, प्रह्वीदेवी, सत्या, ईशाना और अनुग्रह को नमस्कार है, फिर—॥१३॥

नमो भगवते तद्वद्विष्णवे तदनन्तरम् ।
सर्वभूतात्मने चेति वासुदेवाय इत्यथ ॥
ततः सर्वात्मकायेति योगपीठात्मने नमः ॥१४॥

इसके पश्चात् उसके मध्य भाग में सर्वभूत स्वरूपी विश्वरूप और इन योगपीठात्मा भगवान् विष्णु को नमस्कार है, ऐसा कहे ॥१४॥

प्रणवादि नमोऽन्तोऽयं मन्त्रः पीठात्मने नमः ।
यजामहेश्वरा–मों ह्रीमात्मना संव्यवस्थितौ ॥१५॥

फिर प्रणव (ॐ) को आदि में लगाकर 'यजा महेश्वराय' के आगे नमः पद लगाकर इस मन्त्र से पीठात्मा शंकर को विधि पूर्वक नमस्कार करे क्योंकि वे ॐ और ह्रीं में आत्मा रूप से स्थित हैं ॥१५॥

नमोऽन्ताय च रामाय ससीताय नमो नमः ।
सान्निध्याधारयोगेन नियतेन षड़ात्मना ।
व्यवस्थिताय रामाय नमोंऽन्ताय च वह्नये ॥१६॥

इस मन्त्र के अन्त में नमः पद दिया गया है । अतएव ससीताय रामाय नमः कहकर पूजा पूर्वक सन्निहित आधार सम्पर्क से छै रूप में अवस्थित श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहे ॥१६॥

श्री बीजाद्यपि सीतायै स्वाहान्तोऽयं षड़क्षरः ॥१७॥

फिर 'श्रीं सीताये स्वाहा' इस षडक्षर मन्त्र से सीता जी की आराधना करे ॥१७॥

तदेतन्मन्त्ररूपाय. रामाय ज्योतिषे नमः ।
सानुस्वार स्वरान्ताय वह्नये हृदयाय च ॥१८॥

नमश्चैव स्वरान्ताय स्वाहान्ताय कृशानवे ।
शिरसेऽप्यग्नये चान्तः शिखायै वषडात्मने ॥१९॥

फिर राम मन्त्र द्वारा निम्न प्रकार से अंगन्यास करे, रां हृदयाय नमः, रीं शिरसे स्वहा, रूं शिखायै वषट् ॥१८-१९॥

ऐ मन्ताय हृद्दे नित्यं कवचाय हूमेव च ।
चतुर्दश स्वरान्ताय सानुस्वाराय वह्नये ॥२०॥

नेत्राभ्यां वौषड़न्ताय रोप्यस्त्राय फड़ात्मने ।
एवं नमः षड़ङ्गाय रामाय ज्योतिषे नमः ॥२१॥

रँ कवचाय हुँ, रौं नेत्राभ्यां वौषट्, रः अस्त्राय फट्। इन छै मन्त्रों से क्रमशः हृदयादि छै स्थानों को हाथ से स्पर्श करने पर षडङ्ग न्यास हो जाता है ॥२०-२१॥

आत्मान्तरात्म परम ज्ञानात्मभ्योऽग्नितः क्रमात् ।
निवृत्यै च प्रतिष्ठायै विद्यायै ते नमाम्यहम् ॥२२॥

इसी प्रकार-आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः ज्ञानात्मने नमः कहे। फिर निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या-इन सबको नमस्कार करके ॥२२॥

शान्त्यै चात्मादि शक्तित्वे स्थित्यै तद्रूपिणे नमः ।
वासुदेवाय ते नित्यं तथा सङ्कर्षणाय च ॥२३॥

शान्ति और स्थिति को ॐकारादि और चतुर्थ्यन्त करके नमोऽन्त पद से वन्दना करे। इसी प्रकार वासुदेव, संकर्षण और ॥२३॥

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रिये शान्त्यै नमो नमः ।
प्रीत्यै रत्यै नमो राम द्वितीयावरुणात्मने ॥२४॥

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्री, शान्ति, प्रीति, रती और वरुण (जल के देवता) रूपी श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूँ॥२४॥

अग्रे हनूमान सुग्रीवो भरतश्च विभीषणः ।
लक्ष्मणोऽप्यङ्गदश्चैव शत्रुघ्नो जाम्बवांस्तथा ॥२५॥

फिर प्रथम हनुमान, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद शत्रुघ्न, जाम्बवान, ॥२५॥

धृतिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमन्त्रिणः ॥२६॥

तथा धृति, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र ये आठ मन्त्री हैं ॥२६॥

एतेभ्यो रामरूपेभ्यो युष्मभ्यं प्रणमाम्यहम् ।
इन्द्राग्नि वामदेवेभ्यो सायुधेभ्यो नमः नमः ॥२७॥

ये सब ही राम रूप हैं, इनको प्रणाम करता हूँ, फिर शस्त्रधारी इन्द्र, अग्नि और बामदेव को बारम्बार प्रणाम करता हूँ, ऐसा कह कर ॥२७॥

ततो नैऋतये तुभ्यं वरुणाय नमो नमः ।
वायवे धनदायाथ रुद्रायेशाय ते नमः ॥२८॥

फिर नैऋत, वरुण वायु, कुबेर, रुद्र ईशान—॥२८॥

ब्रह्मणेऽनन्तरूपाय दिक्कालात्मने नमः ।
तदा युधाय वज्राय शक्तये दण्डकाय च ॥२९॥

ब्रह्माजी और अनन्त इन सब दिक्पालों को नमस्कार है। फिर उनके शस्त्र-वज्र,शक्ति, दण्ड और—॥२९॥

नमः खड्गाय चापाय ध्वजाय च गदात्मने ।
त्रिशूलायाम्बुजायाथ चक्राय सततं नमः ॥३०॥

खड्ग, धनुर्वाण, ध्वजा, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र इन सब को सदैव नमस्कार है। ऐसा कह कर—॥३०॥

वशिष्ठो वामदेवश्च जावालिर्गौतमस्तथा ।
भरद्वाजः कौशिकश्च वाल्मिकिर्नारदस्तथा ॥३१॥

वसिष्ठ, वामदेव, जावालि, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि और नारद इन सब ऋषियों को नमस्कार है ॥३१॥

शङ्खः चक्र गदा पद्म शार्ङ्गं वाणात्मने नमः ।
गरुत्मते नमस्तुभ्यं विश्वक्सेनादिकाश्च ये ॥३२॥

इसके पश्चात् भगवान् के शंख, चक्र, गदा, पद्म और धनुष-वाणादि अस्त्र-शस्त्रों को तथा उनके वाहन गरुड़ को और उनके अनुचर विश्क्सेन आदि को नमस्कार करता हूँ ॥३२॥

सर्वैश्वर्य स्वरूपाय ज्योतिषे सततं नमः ॥३३॥

अन्त में उन अणिमादि समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न परम ज्योतिः स्वरूप भगवान् को बारम्बार नमस्कार है ॥३३॥

मनोवाक्कायजनितं कर्म यद्वा शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥३४ ॥

मेरे द्वारा कायमनोवाक्य से जो कुछ अच्छे बुरे कर्म हुए हैं वे सब रघुनाथ जी की प्रीति के लिये हों, धनुषधारी श्री रामचन्द्र जी को मेरा प्रणाम है ॥३४॥

एतद्रहस्यं सततं प्रत्यूयसि समाहितः ।
यः पठेद्राम माहात्म्यं विश्वैश्वर्य निधिर्भवेत् ॥३५॥

जो व्यक्ति नित्य ही प्रातःकाल उठकर एकाग्र मन से इस श्रीराम जी की महिमा का पाठ करता है वह विश्व की समस्त सम्पदाओं वाला होता है ॥३५॥

विनाशयेदसौभाग्यं दारिद्र्यौघं निकृन्तयेत् ।
उपद्रवांश्च शमयेत् सर्वलोकं वशं नयेत् ॥३६॥

इस श्री रामजी कीं महिमा का पाठ करने से दुर्भाग्य नष्ट होता है, दरिद्रता की बाढ़ नष्ट होती, यह महिमा उपद्रवों को शान्त कर देती है और इसके फल से सबको वश में किया जा सकता है ॥३६॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय ब्रह्मार्पण धियान्वहम् ।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥३७॥

जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर नित्य इस महिमा का पाठ ब्रह्मस्वरूपी श्रीरामचन्द्र जी को अर्पण करने की भावना से करता है वह शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त होता है और फिर उसे संसार में आना नहीं पड़ता ॥३७॥

नारदीयमिदं स्तोत्रं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम् ।
पठितव्यं प्रयत्नेन रामार्चनपरायणैः ॥३८॥

हे मुनिवर सुतीक्ष्ण जी ! नारद जी के कहे हुए इस स्तोत्र का पाठ श्री रामचन्द्र जी की आराधना करने वाले पुरुषों को यत्न सहित अवश्य करना चाहिये ॥३८॥

गण प्रत्यादयः सर्वे द्वाराङ्गावृत्ति रूपिणः ।
प्रणवादि चतुर्थ्यन्त नमोऽन्ताः स्वस्वनामभिः ॥३९॥

पूर्वोक्त गणेशादि समस्त देवताओं को प्रभु श्री राम जी का अंग आवरण और द्वार देवता जानकर ॐकारादि चतुर्थी विभक्त्यन्त उनके नाम के अन्त में नमः पद लगा कर पूजा करनी चाहिये ॥३९॥

पूजनीयाः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
उपचारैः षोड़शभिस्तथैव दशभिः पुनः ॥४०

इन सब द्वार देवताओं की गन्ध पुष्पाक्षतादि से षोड़ष या दश उपचारों के द्वारा यत्न पूर्वक पूजा करे ॥४०॥

पञ्चभिर्वा प्रयत्नेन स्वस्वशक्त्यनुसारतः ।
गणपत्यादयोऽप्येवं पूजनीया प्रयत्नतः ॥४१॥

अथवा अशक्त होने पर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार पञ्चोपचार से भी यत्न पूर्वक गणेशादि देवताओं की पूजा करने पर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ॥४१॥

इति श्री अगस्त्य-संहितायां मुरादावाद निवासी साहित्यरत्न पं० महावीर प्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां परमरहस्ये कथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥



एकादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

शरीरं शोधयेदादावधिकारार्थं मन्वहम् ।
तीर्थावगाहनं वाह्योऽप्यन्तर्भूत विशोधनम् ॥१॥

अगस्त्य जी वोले—हे तपोधन ! नित्य पूजा करने में अधिकार पाने के निमित्त सब से पहले देह को शुद्ध करे। इसके लिये तीर्थ (पवित्र स्थान) के जल से स्नानादि करने पर वाह्य शुद्धि होती है और अन्तर की शुद्धि के लिये—॥१॥

मातृकान्यास योगैश्च शोधयेद्विध्यनुष्ठितैः ।
पूजा द्रव्याण्यपि ततः शोधयेत प्रोक्षणादिभिः ॥२॥

यथा विधि मातृकान्यासादि करने से अन्तर की शुद्धि होती है तथा पूजा की सामग्री पर जल के छींटे देकर उसे शुद्ध करे ॥२॥

पूजापात्राणि शङ्खञ्च शोधयेत क्षालनादिना ।
शुद्धश्च शुद्ध द्रव्यैश्च पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥३॥

फिर पूजा के पात्रों और शंख को जल द्वारा प्रक्षालनादि से शुद्ध करे। इस प्रकार स्वयं शुद्ध होकर शुद्ध द्रव्यों से पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करे ॥३॥

एवमाराधितो देवः सम्यगाराधितो भवेत् ।
न चेन्निरर्थकं सर्बं सिन्धुसैकत वृष्टिवत् ॥४॥

इस विधान से देवता की आराधना करने पर ही वह आराधना ठीक होती है । नहीं तो समुद्र की बालुकामय भूमि में वर्षा के समान सब निरर्थक हो जाता है ॥४॥

शौचाचमनहीनस्य स्नान सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।
निष्फलाः स्युर्यथा चेतदम्भरेण भवेत्तथा ॥५॥

जिसप्रकार स्नान-आचमन आदि से पवित्र हुए बिना सन्ध्योपासना कर्म निष्फल होता है उसी प्रकार अनाचारी मनुष्य के द्वारा श्रीरामचन्द्र जी की करी हुई पूजा निष्फल होती है ॥५॥

संशोध्य पूजाद्रव्याणि स्वस्यापि वहिरन्तरम् ।
शङ्खञ्च पूजयेत्पूर्वं पूज्यपूजार्हतां व्रजेत् ॥६॥

अतएव प्रथम अपना अन्तर बाहर शुद्ध करके पूजा की सामग्री शुद्ध करे । फिर प्रथम शंख की पूजा करे, तभी नियमानुसार पूजा होगी ॥६॥

पूजकस्यापि पूज्यस्यापावनस्या कृतं वृथा ।
अपावनान्य पूज्यानि साधनानि च वर्जयेत् ॥७॥

क्योंकि पूजक में या पूजा की सामग्री में अपवित्रता रहने से सब पूजा कार्य व्यर्थ हो जाता है । अतएव अपवित्र अवस्था में और अपवित्र पूजा सामग्री से पूजा करना वर्जित है ॥७॥

अतः स्नात्वा प्रकुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च ।
विन्यस्य मातृकाः पूज्यां वैष्णवीं केशवादिकास् ॥८॥

अतएव प्रथम स्नान करके भूत शुद्धि करे । फिर वैष्णवी मातृकाओं का न्यास, केशवादि न्यास– ॥ ८ ॥

विधाय तत्वन्यासञ्च न्यासं तन्मूर्तिपञ्जरम् ।
तद्रषिछन्दसोऽभ्यासं तथा तन्मन्त्रदेवताम् ॥९॥

और तत्त्व न्यास करके मूर्ति पञ्जर न्यास करे । फिर मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता के नाम का उच्चारण करके–॥ ९ ॥

विन्यस्यैव षड़ङ्गानि तत्तद्बीजाक्षराणि च ।
अथातो देवताध्यानं ततः पूजनमन्ततः ॥१०॥

मन्त्र के उन बीजाक्षरों द्वारा षडङ्ग न्यास करे । इसके पश्चात् देवताओं का ध्यान करके पूजा के अन्त में– ॥ १० ॥

ततो निवेद्य तत्सर्वं जपेन्मन्त्र मनन्यधीः ।
ततो विज्ञाप्य देवेशं परिवारांश्च पूजयेत् ॥११॥

सम्पूर्ण पदार्थ भगवान् को निवेदन करके एकाग्रमन से मन्त्र का जाप करे । फिर देवता की आज्ञा लेकर उनके परिवार की पूजा करे ॥ ११ ॥

एवं सम्पूजितो देवः सर्वान्कामान् प्रयच्छति ।
वाह्यपूजां ततः कुर्यादैहिकाभ्युदयाय वै ॥१२॥

इस प्रकार पूजित होने पर श्रीरामचन्द्र जी भक्त के समस्त कार्य पूरे करते हैं। इसके पश्चात् दैहिक कल्याण के लिये जिस प्रकार बाह्य पूजा की जाती है उसकी विधि कहता हूँ ॥ १२ ॥

विलिप्य वेदिकां सम्यङ्मण्डलं तत्र कारयेत् ।
शालितण्डुल चूर्णैश्च नील पीत सितासितैः ॥१३॥

प्रथम गोबर से वेदी लीपकर उस पर एक पूरा मण्डल बनावे और उसमें वासमती चावल के चूर्ण को नीला, पीला, श्वेत और काला करके—॥ १३ ॥

लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्रसमावृतम् ।
षट्कोण कर्णिकामध्ये कोणाग्रे वृत्तसंवृतम् ॥१४॥

उन चारों रंगों से अष्टदल वाला पद्म बनावे और उसको चारोंओर से समान रेखाओं द्वारा घेर दे। फिर पद्म के मध्य भाग में षट्कोण (छै कोनों वाला यन्त्र) बनावे और उसे गोल रेखा से घेर दे ॥ १४ ॥

साध्यमेतत्ततः शोभारेखाभिरुप शोभितम् ।
सम्पूज्य मण्डलञ्चैतत्तत्र सिंहासनं न्यसेत् ॥१५॥

फिर इस मण्डल की शोभा के लिये कुछ शोभा रेखायें भी बनावे। इस मण्डल की पूजा करके उस पर सिंहासन स्थापित करे ॥ १५ ॥

चन्द्रातप पताकैश्च तोरणैरपि शक्तितः ।
विचित्रं तत्र तत्रापि भित्तिस्तम्भस्थलादिषु ॥१६॥

और उस पर चन्दोवा तान कर पताकाएं फेहरावे तथा अपनी शक्ति के अनुसार बंदनवार लगाकर नाना प्रकार से उस स्थान की दीवारें और खम्वों आदि को सजावे ॥ १६ ॥

एवं सुशोभिते स्थाने सर्वमङ्गलसंयुते ।
पुण्यस्त्रीभि गृहस्थैश्च परितो व्यवहर्तृभिः ॥१७॥

इस प्रकार उस स्थान को मनोहर और सब माङ्गलिक द्रव्यों से पूर्ण करके उसके चारों ओर साध्वी स्त्रियों और गृहस्थ जनो को बैठावे ॥ १७ ॥

गायद्भिरपि नृत्यद्भिःवंदद्भिः स्तुति रूपकम् ।
भेरी मृदङ्ग वंश्यादि कांश्य तालादिभिर्मुहुः ॥१८॥

और भेरी (नगाड़ा), मृदङ्ग (ढोलक जैसी पखावज), वंशी और कांस्य (कांसे का बजाने वाला बेला या थाली) और हाथ की ताली इत्यादि से ताल-स्वर के साथ गायक और भगवान् की स्तुति पाठकों के साथ स्वयं नृत्य-गीत करता रहे ॥ १८ ॥

रघुनाथः स्वयं तत्र प्रसन्नो भगवान् भवेत् ।
सम्पाद्य विविधैं पुष्पैः पूरयेत् पुष्पचं धनीम् ॥१६॥
तुलसी पङ्कजाताद्यैर्माल्यैर्बहुविधैरपि ॥२०॥

तब भगवान् श्री रघुनाथ जी प्रसन्न होकर वहां स्वयं विराजते हैं, (इसमें सन्देह नहीं है) ॥ १६ ॥

अनेक प्रकार के पुष्पों को इकट्ठा करके उनकी मालाएं बनावे और उनमें तुलसीदल तथा कमल के पुष्प बीच–बीच में लगाकर मालाओं को अनेक प्रकार से सजावे ॥ २० ॥

स्वपुरो दक्षिणे तीर्थ शुद्धवारि प्रपूरितम् ।
कलसं स्वपुरो वामभागे तु विनियोजयेत् ॥२१॥

अपनी पोयी हुई उन मालाओं को अपने दाहिनी ओर रक्खे और अपने बाँयीं ओर तीर्थ के पवित्र जल से भरा हुआ कलश रक्खे ॥ २१ ॥

अन्यानि पूजाद्रव्याणि पुरस्तादेव विनिक्षिपेत् ।
आराधनाय देवस्य वेदिकायां सुखासने ॥२२॥
कुशान्तरण वैयाघ्र चर्म वासो विनिर्मिते ।
उपविश्य शुचिर्मौनी भूत्वा पूजां समारभेत् ॥२३॥

और अन्यान्य पूजा साग्रमी अपने सन्मुख रक्खे। फिर देवता की आराधना के लिये वेदी (स्वयं बैठने का ऊँचा स्थान) पर कुशासन, बाघाम्बर अथवा वस्त्र निर्मित कोमल आसन बिछाकर पवित्र और मौनी (इधर-उधर की बातें न करते हुए) शान्त होकर सुखासन[1] से बैठ कर पूजा प्रारम्भ करे ॥२३॥

तुलसी काष्ठ घटितै रक्षाकारकारितैः ।
शङ्ख चक्र गदा पद्म पादुकाकार निर्मितैः ॥२४॥

---

(१) सुखासन–पूजा करने के समय जिस प्रकार सुख से बैठा जा सके उसे सुखासन कहते हैं।

पूजा करते समय रुद्राक्ष के आकार की अथवा शंख, चक्र, गदा, पद्म के आकार की तुलसी काष्ठ की माला जो पादुकाकार[1] द्वारा निर्मित हो ॥ २४ ॥

निर्मितां मालिकां कर्णे विधायार्चन मारभेत् ।
तथामलक मालाञ्च सम्यक् पुष्करमालिकास् ॥
निर्माल्य तुलसीमालां शिरस्यपि निधाय वै ॥२५॥

ऐसी तुलसी काष्ठ से निर्मित मालाएं कानों में धारण करे और आंवले [2] की माला या कमल की माला अथवा देवता पर चढ़ी हुई तुलसी की माला शिर पर धारण करे ॥ २५ ॥

निर्माल्य चन्दनेनाङ्गमङ्कयेत्तस्य नामभिः ।
तस्या युधानि बाह्वोश्च तेनैव द्विजसत्तम ॥२६॥

फिर देवता को चढ़े हुए चन्दन से, अपने शरीर के अंग (मस्तक) में देवता का नाम लिखे। और उनके आयुध

---

(१) पादुकाकार–जिस प्रकार पादुकाकार लकड़ी को काट कर और उसे चिकना कर खड़ाऊं का आकार देकर उसमें छेद कर खूंटी लगाता है उसी प्रकार तुलसी काष्ठ के दाने बना कर उनमें छेद करना पड़ता हैं तब माला बनती है। रुद्राक्ष की माला बनाने के लिये रुद्राक्षों के दानों में छेद करना पड़ता है। यह कार्य अभ्यासी व्यक्ति ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अपने लिए स्वयं माला पोहने का निषेध है। यह भी ध्यान रहे कि अपने लिये स्वयं कोई भी माला क्यों न हो, शुद्धि संस्कार के बिना माला पहनना या जपना निरर्थक होता है।

(२) आंवले की माला और कमल की माला से यहां छोटे आंवले की गुठली और कमलगट्टे की माला समझना चाहिये।

(शस्त्र) शंख, चक्र, गदा और पद्म अपने दोनों वाहुओं में अंकित करे ॥ २६ ॥

पापिष्ठोवाप्यपापिष्ठः सर्वज्ञोऽप्यज्ञएव वा ।
भवेदेवाधिकार्यत्र पूजाकर्मण्यसंशयः ॥२७॥

इस विधि से पूजा करने वाला व्यक्ति पापी होने पर भी पुण्यात्मा और मूर्ख होने पर भी सर्वज्ञ की नाईं निःसन्देह भगवान् की पूजा करने का अधिकारी है ॥ २७ ॥

पद्मस्वस्तिक भद्रादिरूपेणा कुञ्च्य पदद्वयम् ।
विनायकं नमस्कृत्य सव्यांशे च सरस्वतीम् ॥२८॥

प्रथम अपने दोनों पैरों को मोड़कर पद्मसन[1] या स्वस्तिकासन[2] अथवा भद्रासन[3] आदि से सुख पूर्वक आसन पर बैठकर

---

(१) पद्मासन–बद्ध और मुक्त भेद से दो प्रकार का है–बद्ध पद्मासन योगियों के लिए है। केवल वाम जंघा पर दक्षिण चरण और दक्षिण जंघा पर वाम चरण रखकर दोनों चरणों पर दोनों हाथों के तालु लगाने से मुक्त पद्मासन बनता है, इसे सुखासन भी कहते हैं। यहाँ केवल पद्मासन से बैठने का विधान है, हाथों से पूजा क्रिया करनी है।

(२) स्वास्तिकासन – जानूर्वोरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे। ऋजुकायः समासीन स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ अर्थात् जानु और पिंडुली के मध्य भाग में दोनों चरणों के तलुओं को लगाकर सावधानी से बैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं।

(३) भद्रासन–अण्डकोषों के नीचे सीवन के दोनों ओर एड़ी के ऊपर की गांठें इस प्रकार रक्खे कि वाम पैर की एड़ी की गांठ सीवन के वाम भाग में और दक्षिण पैर की एड़ी की गांठ सीवन के दक्षिण भाग में रहे। यह भद्रासन कहलाता है (हठयोग संहिता)*

अपनी दाहिनी ओर गणेश जी को और सरस्वती जी को प्रणाम करे ॥ २८ ॥

दक्षिणांशे पूर्ववच्च दुर्गाञ्च क्षेत्रपं पुनः ।
प्रणाम्याथ गुरून भूयो नत्वा गुरुपरम्पराम् ॥२६॥

फिर दाहिनी ओर ही पहले के समान दुर्गा, क्षेत्रपाल और गुरुदेव को प्रणाम करके पुनः गुरु परम्परा को प्रणाम करे ॥ २६ ॥

ततो देवं नमस्कृत्य कुर्यात्तालत्रयं पुनः ।
तारमस्त्राय फट् प्रोक्त्वा भ्रामयेद्दक्षिणं करम् ॥३०॥

फिर सन्मुख देवता को प्रणाम करके तीन बार ताली बजावे और अपने शिर के ऊपर सीधे हाथ को घुमाते हुए 'अस्त्राय फट्' मन्त्र कहे ॥ ३० ॥

ततस्तु चिन्तयेदन्तर्देवं स्थान त्रयान्तरे ।
ज्योतिर्मयमनुस्यूतं सत्यज्ञान सुखात्मकम् ॥३१॥

फिर अपने शरीर में भोहों के मध्य में मस्तक और वक्षःस्थल इन तीन स्थानों में सत्य, ज्ञान और सुख स्वरूप देवता की तेजोमय भूर्ति का ध्यान करे ॥ ३१ ॥

आत्मनः परितो वह्नि प्राकारं त्राणनाय च ।
भूत प्रेत पिशाचेभ्यो विधाय तदनन्तरम् ॥३२॥

पूजा के लमय भूत, प्रेत और पिशाचों से अपनी रक्षा के लिये अपने चारों अग्नि की भावना करके—॥ ३२ ॥

अद्भिः पुष्पाक्षतैश्चैव वह्निबीजास्त्रमन्त्रितैः ।
प्रक्षिपेत् परितो मन्त्री भयविघ्ननिवृत्तये ॥३३॥

इसके द्वारा किये जाने वाले भय और विघ्नों को दूर करने के लिये पूजक वह्नि बीजरं और अस्त्रायफट् मन्त्र से जल, पुष्प और अक्षत आदि अपने चारों ओर छोड़ दे ॥ ३३ ॥

हृदम्बुजे ब्रह्मकन्द सम्भूते ज्ञान नालके ।
ऐश्वर्याष्टदलोपेते ज्ञान-वैराग्य कर्णिके ॥
आराग्रमात्रो जीवस्तु चिन्तनीयो मनीषिभिः ॥३४॥
नेतव्यो हंसमन्त्रेण द्वादशान्ते स्थितः परः ॥३५॥

इसके पश्चात् ब्रह्मरूपी कन्द से उत्पन्न तत्त्व ज्ञानरूपी नाल में प्रस्फुरित ऐश्वर्य रूप (अणिमादि) [1] आठदल हैं और उनकी कर्णिकाओं में ज्ञान प्राप्ति के लिये वैराग्य स्थित है, ऐसा जान कर अपने हृदय कमल में चर्मकार की सुतारी की सूक्ष्म नोक के बराबर विद्वान् साधक जीवात्मा की चिन्तना करे ॥३४॥ फिर सूर्य मण्डल के बीच में हंस मन्त्र के द्वारा उस जीवात्मा को लाकर स्थित करे ॥ ३५ ॥

तेन संयोज्य विधिवद्भूतशुद्धिमथाचरेत् ।
भूतानि चाथ पृथिवी जलं तेजोमरुद्वियत् ॥३६॥

उसके साथ ही विधि पूर्वक भूतशुद्धि करे। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश इनको पंचभूत कहा गया है ॥ ३६ ॥

(१) अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्वत्व और वशित्व ये आठों सिद्धियां ऐश्वर्य रूप हैं।

यद्यतो जायते यस्मिन् प्रलयोत्पादनं पुनः ।
शरीराकार भूतानां भूतानां शोधनं विदुः ॥३७॥
१

जो महाभूत जिस महाभूत से उत्पन्न होता है अन्त में वह उसी में लय हो जाता है और फिर वह उसी नाम से पुकारा जाता है, अतएव विद्वान् पुरुष को भूत शुद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥३७॥

२

मरुदग्नि सुधा बीजै: पञ्चाशन्मातृ मात्रकैः ।
३
प्राणान्निरुध्यात्म देहं शोधयेत्तत् पुनर्दहेत् ॥३८॥

वायु बीज (यं) अग्निबीज (रं) और सुधा बीज (अं) के द्वारा पचास मातृकाओं सहित प्राणों को रोक कर अपने शरीर का शोधन करे फिर आत्मदेह को अग्नि बीज (रं) से दग्ध करे ॥३८॥

तद्देहं पुनराप्लाव्य पुनर्जीवमिहानयेत् ।
जीवने पुनरात्मानं चिन्तयेत् पूजकाप्तये ॥३९॥

फिर आत्मदेह को अमृत बीज (अं) से प्लावित करे, फिर जीव को अपने स्थान पर लावे। इस प्रकार तत्व सिद्धि के लिये आत्मचिन्तन करते हुए जीव को पूर्वावस्था में ले आवे ॥३९॥

---

(१) महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं जो प्राणीमात्र के शरीर में व्याप्त हैं।

(२) पञ्चाशनमातृकायें—ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं।

(३) प्राणायाम—श्वास प्रश्वास की गति को रोकने का नाम प्राणायाम है। इसमें तीन क्रियाएं होती हैं जिनके नाम

जीवस्य तत्वसिध्यै च तस्याध्यात्म सुसिद्धये ।
नयना नयनार्थञ्च हंसः सोऽहमितीरयेत् ॥४०॥

जीव की तत्व सिद्धि में और उसके आत्मज्ञान में एकता लाने के लिये मैं ही ब्रह्म हूँ, इस भावना से प्राणायाम के पश्चात् सोऽहं वाक्य उच्चारण करे ॥४०॥

भूतशुद्धि रियं नाम कर्तव्या भूतसाक्ष्यकृत् ॥४१॥

इसी का नाम भूतशुद्धि है। साधक भूतों को साक्षी करके यह कर्तव्य कर्म करे ॥४१॥

पूरक, कुम्भक और रेचक हैं। प्राणायाम में दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठका उंगलियों से बाएँ नासापुट को बन्द करके दाहिने नासापुट से श्वास खींचने को पूरक कहते हैं, फिर श्वास खींच कर दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नासापुट को भी बन्द करके श्वास रोकने को कुम्भक कहते हैं, इसके पश्चात् बायें नासापुट से उंगलियाँ हटा कर श्वास छोड़ने को रेचक कहते हैं, इस प्रकार एक प्राणायाम होता है। प्राणायाम में यह ध्यान रखना चाहिये कि जितने समय पूरक किया जाय उससे चौगुने समय तक कुम्भक होना चाहिये और पूरक से दुगने समय तक रेचक क्रिया होनी चाहिये। इन तीनों क्रियाओं को करते समय क्रम से तीनों बीजों सहित पंचाशन मातृकाओं का क्रम से मन में स्मरण करते रहना चाहिये। इस प्रकार से नियमित प्राणायाम करने से और उनकी संख्या बढ़ाते रहने से आत्मशुद्धि के साथ आयु बढ़ती है, स्वास्थ्य ठीक रहता है। यह योग की पहली क्रिया है। इससे इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त होता है। यही भूत शुद्धि कहलाती है।

भूतशुद्धिंबिनाध्यान-जप-होमार्चनक्रियाः ।
भवन्ति निष्फलाः सर्वप्रकारेणाप्यनुष्ठिताः ॥४२॥

भूतशुद्धि के किये बिना देवता का ध्यान-जप-होम तथा पूजा आदि सब प्रकार के शुभ कर्म विधिपूर्वक करने पर भी निष्फल होते हैं ॥४२॥

गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमन हरेः ।
भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयोः शोधनं पुनः ॥४३॥

हरि (विष्णु) भगवान् के मन्दिर में जाना तथा शुद्ध रूप से भगवान् के समान आचरण करना और भक्ति पूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करना और फिर उनके चरणों को धोना ॥४३॥

पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः ।
करयोः सर्वशुद्धिनामियं शुद्धिर्विशिष्यते ॥४४॥

एवं विष्णु भगवान् की पूजा के लिये भक्ति पूर्वक पत्र-पुष्पादि तोड़ कर लाना, इसी का नाम करशुद्धि है, यह समस्त शुद्धियों में प्रशंसनीय है ॥४४॥

तन्नाम कीर्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्तनम् ।
भक्त्या श्रीरामचन्द्रस्य वचसः शुद्धिरिष्यते ॥४५॥

विष्णु भगवान् अथवा श्रीरामचन्द्र जी के नाम का भक्ति पूर्वक कीर्तन तथा उनके गुणों के गान का कीर्तन करने को ही वाणी की शुद्धि कहा गया है ॥४५॥

सत्कथा श्रवणञ्चैव तस्यात्मनि निरीक्षणम् ।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते ॥४६॥

श्रीरामचन्द्र जी के गुणानुवाद की सुन्दर कथा सुनने से

कानों की शुद्धि होती है और उनके विग्रह के दर्शन तथा उत्सव देखने से नेत्रों की शुद्धि होती है। ऐसा धर्मशास्त्र में कहा गया है ॥४६॥

उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः ॥४७॥

और फिर उन हरि भगवान् के निकट नतमस्तक होने से शिर की शुद्धि कहा गया है ॥४७॥

आघ्राणं गन्धपुष्पादेरर्चितस्य तपोधनः !
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्यैवाभिधीयते ॥४८॥

हे तपोधन ! भगवान् की पूजा में अर्पण किये हुए पुष्प-चन्दनादि को सूंघने से घ्राण की शुद्धि हो जाती है ॥४८॥

पत्रं पुष्पादिकं यद्यद्रामपाद युगार्पितम् ।
विशुद्धये भवत्येव आत्मना धार्यते यदि ।४६॥

साधक के द्वारा पत्र-पुष्पादि जो कुछ भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के चरणारविन्दों में अर्पण किया गया हो, तो उस निर्माल्य (पुष्प-माला आदि) को यदि साधक स्वयं धारण करे तो उसके सर्वाङ्ग का शोधन हो जाता है ॥४६॥

अधुनाप्यथवा पूर्वं यद्यद्विष्णुसमर्पणम् ।
तदेव पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ॥५०॥

वर्तमान में या इससे पूर्व समय में जो कुछ भी विष्णु भगवान् के चरणों में अर्पण किया गया हो, वह सब ही इस संसार में पवित्र है और वह सब प्रकार के पापों का शोधन कर देता है ॥५०॥

इति श्री अगस्त्य-संहितायां महावीर प्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां परमरहस्य कथनं नाम एकादशोध्यायः ।११।